॥ श्रीः ॥

समयसारनाटकभाषा।

जगद्विख्यात कविशिरोमणि

पंडित बनारसीदासजी रचित.

जिसको

बाबू सूरजभानु वकील देवबन्द
जिला सहारनपुरने

जैनी भाइयोंके हितार्थ प्रकाश किया.

लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबादमें छपा

संवत् १९५५

प्रथमवार १०००] * [मूल्य ॥=)

ना.

न्थ छपहुवे हमारे पास
मेलते हैं। हम नित्य-
२ ग्रन्थ छपवा रहे हैं आशा है कि ह-
मारे भाई इस उत्तम कार्यमें हमारी सहायता करेंगे
जिस भाईको किसी शास्त्रजी की जरूरत हो वह
प्रथम एक पैसेका पोस्टकार्ड भेजकर हमसे हमारी
पुस्तकों का सूचीपत्र मँगालेवें।

भाईयों का दास
सूरजभानु वकील
देवबन्द जिला सहारनपुर

ओं श्रीजिनायनमः ।

अथ श्रीसमयसार नाटक

बनारसीदासकृत प्रारंभः ।

दोहा--श्रीजिन बचन समुद्रको, कौलगि होइ बखान ।
रूपचंद तौहू लिखै, अपनी मति अनुमान ॥ १ ॥

कवित्त इकतीसासर्व हृस्वाक्षर--करम भरम जग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग शिवमग दरसि । निरखत नयन भविक जल बरखत, हरखत अमित भविकजनसरसि॥ मदन कदन जित परम धरम हित, सुमिरत भगत भगत सब डरसि । सजल जलद तन मुकुट सपत फन, कमठ दलन जिन नमत बनरसि ॥ १ ॥

सर्व लघु स्वरांत अक्षरयुक्त छप्पय छंद--सकल करमखल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग । धवल परमपद रमन जगत जन अमल कमल खग ॥ परमत जलधर पवन, सजल घन सम तन समकर । पर अघ रजहर जलद, सकल जन नत भव भय हर ॥ यम दलन नरक पद छय करन, अगम अतट भव जल तरन । वर सबल मदन बन हर दहन, जय जय परम अभय करन ॥ २ ॥

सवैया इकतीसा--जिन्हके बचन उर धारत जुगल नाग, भये धरनिंद पदमावति पलक में । जाके नाम महिमा सों कुधातु कनक करै, पारस पाषान नामी भयोहै खलक में ॥

जैनकी जन र प्रभाव हम, अपनो स्वरूपलख्यो
ानसो भल ाभु पारस महारसके दाता अब,
र मोहि सा ा के ललक में ॥ ३ ॥

ानकी स्तुति ।

डिल्ल छंद अविकार, परम रसधामहैं । स-
न सरवंग भेराम हैं । शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध
है अनंत ोमनि सिद्ध, सदा जयवंतहैं ॥४॥

ध्यानकी स्तुति ।

सवैया के उजागर सहज सुख सागर,
ण र स्यो है । सरनकी रीत हरै मरन
का भैन करै, करनसों पीठ दे चरण अनुसर्‍योहै ॥ धरमको मंडन भरमको विहंडन जु, परम नरम ह्वैके करमसों लर्‍यो है । ऐसो मुनिराज भुवलोक में बिराजमान, निरखि बनारसी नमस्कार कर्‍यो है ॥ ५ ॥

समकितीकी स्तुति ।

सवैया तेईसा--भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चंदन । केलिकरै शिव मारगमें जगमांहि जिनेश्वरके लघुनंदन । सत्य स्वरूप सदा जिन्हके प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकंदन । संत दशा तिन्हकी पहिचान करै कर जोरि बनारसि वंदन ॥ ६ ॥

सवैया इकतीसा--स्वारथके सांचे परमारथके सांचे चित्त सांचे सांचे बैन कहै सांचे जैनमती हैं । काहूके विरोधी नांहि परजायबुद्धि नांहि, आतम गवेषी न ग्रहस्थहैं न यती ॥ सिद्ध रिद्ध वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा, अंतरकी ल-

घसों अजाची लच्छपती हैं॥ दास भगवन्तके उदास रहै जगतसों, सुखिया सदीव ऐसे जीव समकिती हैं ॥ ७ ॥

सवैया इकतीसा--जाके घट प्रगट विवेक गनधरकोसो, हिरदे हरख महा मोहकों हरतु हैं। सांचो सुख मानें निज महिमा अडोल जानें, अपुही में आपनो सुभावले धरतुहैं॥ जैसे जल कर्दम कतक फल भिन्न करै, तैसे जीव अजीव विलच्छन करतुहैं। आतम सगति साधे ज्ञानको उदौ आराधे, सोई समकिती भवसागर तरतुहैं ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा--धरम न जानत बखानत भरमरूप, ठौर २ ठानत लराई पच्छपातकी। भूल्यो अभिमानमें न पाउं धरे धरनी में, हिरदे में करनी विचारै उतपातकी॥ फिरेडावाडोलसों करमके कलोलनमें, वैरही अवस्थासों बघूलाकेसे पातकी। जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुवाती भारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी ॥ ९ ॥

दोहा--वंदौ शिव अवगाहना, अरु वंदों शिवपंथ।
जसु प्रसाद भाषा करों, नाटक नामकग्रंथ ॥ १० ॥

सवैया तेईसा--चेतनरूप अनूप अमूरति सिद्ध समान सदा पद मेरो। मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महातमघेरो॥ ज्ञानकला उपजी अब मोहि कहों गुन नाटक आगम केरो। जासु प्रसाद सधै शिवमारग वेग मिटै भव वास बसेरो ॥ ११ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे कोउ मूरख महासमुद्र तरिवे को भुजानिसों उद्यत भयो है तजि नावरो। जैसे गिरिउपरि बिरषफल तोरिवेकों बावन पुरुष कोउ उमंग उतावरो। जैसे

जलकुंड में निरख शशि प्रतिबिंबताके गहिवेकों कर नीचो कर डावरो । तैसें मै अलपबुद्धि नाटक आरंभ कीनो गुनी मोहि हसेंगे कहेंगे कोउ बावरो ॥ १२ ॥

सवैया इकतीसा--जैसें कोउ रतनसों बींध्यो है रतन कोउ, तामें सूत रेशमकी दोरी पोइ गई है। तैसे बुद्धीटीका करीनाटक सुगम कीनो तापरि अलप बुद्धि सुद्धि परिनई है; जैसे काहु देसके पुरुष जैसी भाषा कहे, तैसी तिनहू के बालकनी सिखोलई है । तैसे ज्यों गिरंथको अरथ कह्यो गुरु त्यों हमारी माते कहिबेकों सावधान भई है ॥ १३ ॥

सवैया इकतीसा--कबहों सुमति व्है कुमतिको विनाश करे, कबहों विमल ज्योति अंतर जगति है । कबहों दया व्है चित्त करत दयालरूप, कबहों सुलालसा व्है लोचन लगति है ॥ कबहों कि आरती व्है प्रभु सनमुख आवे, कबहों सुभारती व्है बाहरि बगति है। धरे दसा जैसी तब करे रीति तैसी ऐसी हिरदे हमारे भगवंतकी भगति है॥१४॥

सवैया इकतीसा--मोक्ष चलबेकों सोन करमको करे बोन, जाको रस भोन बुधलोन ज्यों घुलति है । गुनको गिरंथ निरगुनको सुगम पंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलित है॥ याही के जु पक्षी सो उडत ज्ञान गगनमें, याहीके विपक्षी जग जालमे रुलत है । हाटकसो विमल विराटकसो बिसतार, नाटक सुनत हिय फाटक खुलत है ॥ १५ ॥

दोहा--कहों शुद्ध निहचै कथा, कहों शुद्ध विवहार ।
मुक्ति पंथ कारन कहों, अनुभौको अधिकार ॥ १६ ॥
वस्तुविचारत ध्यावते, मन पावे विश्राम ।

रस स्वादन सुख ऊपजे, अनुभौ याकोनाम ॥ १७ ॥
अनुभौ चिंतामनि रतन, अनुभौ है रसकूप ।
अनुभौ मारग मोक्षको, अनुभौ मोक्षसरूप ॥ १८ ॥

सवैया इकतीसा--अनुभौ के रसकों रसायन कहत जग अनुभौ अभ्यास यहै तीरथकी ठौर है । अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसा सु, अनभौ अधोरसा सु ऊरधकी दौर है ॥ अनुभौ की केली यहै कामधेनु चित्रावेली, अनुभौको स्वाद पंच अमृतकौ कौर है । अनुभौ करम तोरै परमसों प्रीति जोरै अनुभौ समान न धरम कोउ और है ॥ १९ ॥

दोहा--चेतनवंत अनंत गुन, पर्यय सकति अनंत ।
अलख अखंडित सर्वगत, जीव दरवविरतंत ॥ २० ॥
फरस वर्न रस गन्धमय, नरद फास संठान ।
अनुरूपी पुद्गल दरब, नभ प्रदेश परवान ॥ २१ ॥
जैसे सलिल समूहमें, करै मीन गति कर्म ।
तैसें पुद्गल जीवको, चलन सहाई धर्म ॥ २२ ॥
ज्यों पंथिक ग्रीसमसमै, वैठे छाया माहिं ।
त्यों अधर्मकी भूमिमें, जड चेतन ठहरांहि ॥ २३ ॥
संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ बास ।
जो भाजन सब जगतको, सोई दरब अकाश ॥ २४ ॥
जो नवकरि जीरनकरै, सकल वस्तुथितिठान ।
परावर्त्तवर्त्तन करै, काल दरब सो जान ॥ २५ ॥
समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास ।
वेदकता चैतन्यता, एसब जीव विलास ॥ २६ ॥
तनता मनता वचनता, जडता जड संमेल ।

लघुता गुरुता गमनता, ए अजीवके खेल ॥ २७ ॥
जो विशुद्धभावनि बधे, अरु ऊरधमुखहोय ।
जो सुखदायक जगतमें, पुण्यपदारथ सोय ॥ २८ ॥
संकिलेसि भावनिबधे, सहिज अधोमुखहोय ।
दुखदायक संसारमें, पाप पदारथ सोय ॥ २९ ॥
जोई करमउद्योत धरि, होइ क्रिया रस रत्त ।
करषै नूतन करमकों, सोई आश्रव तत्त ॥ ३० ॥
जो उपयोग सरूपधरि, वरतै योग विरत्त ।
रोकै आवत करमकों, सो है संवर तत्त ॥ ३१ ॥
जो पूरब सत्ता करम, करि थिति पूरणआउ ।
खिरवेकों उद्यत भयो, सो निर्झरा लखाउ ॥ ३२ ॥
जो नवकर्म पुरानसों, मिलैं गांठि दृढ होइ ।
सकति बढावै वंसकी, बंध पदारथ सोइ ॥ ३३ ॥
थिति पूरनकरि जो करम, खिरेबंध पदभानि ।
हंस अंस उज्वलकरै, मोक्ष तत्व सो जानि ॥ ३४ ॥
भावपदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व ।
द्रविन अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ए सर्व ॥ ३५ ॥

सवैया इकतीसा--परमपुरुष परमेश्वर परमज्योति, परब्रह्म पूरन परम परधान है । अनादि अनंत अविगत अविनाशि अज, निरदुंद मुकत मुकुंद अमलान है ॥ निरावाध निगम निरंजन निरविकार, निराकर संसार सिरोमनि सुजान है । सरवदरसी सरवज्ञ सिद्ध साई शिव, धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ॥ ३६ ॥

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार, बुद्धरूप अबुद्ध

अशुद्ध उपयोगी है । चिद्रूप स्वयंभू चिन्मूरति धरमवंत, प्रानवंत प्रानिजंतु भूत भवभोगीहै ॥ गुनधारी कलाधारी भेषधारी विद्याधारी,अंगधारीसंधगारी जोगधारी जोगीहै ॥ चिन्मय अखंड हंस अखर आतमराम, करमको करतार परम विजोगी है ॥ ३७ ॥

दोहा--खंविहाय अंबर गगन, अन्तरिक्ष जगधाम ।
व्योम वियततनभ मेघपथ, ए अकाशकेनाम ॥ ३८ ॥
यम, कृतांत, अंतक,त्रिदश,आवर्त्ती, मृतथान ।
प्रानहरन, आदित तनय, कालनाम परमान ॥ ३९ ॥
पुन्य सुकृत ऊरधवदन, अकर रोग शुभ कर्म ।
सुखदायक संसार फल, भागवहिर्मुख धर्म ॥ ४० ॥
पाप अधोमुख एन अघ, कंप रोग दुखधाम ।
कलिलकलुषकिलविषदुरित,अशुभकर्मकेनाम॥ ४१ ॥
सिद्धक्षेत्रत्रिभुवन मुकुट, शिवमग अविचलनाथ ।
मोक्षसुगति बैकुंठ शिव,पंचमगति निरवान ॥ ४२ ॥
प्रज्ञा धिषना से मुखी, धी मेधा मति बुद्धि ।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंसविशुद्धि ॥ ४३ ॥

अथ विचक्षण पुरुषके नाम ।

दोहा--निपुन विचक्षन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान ।
पटु प्रवीनपंडितचतुर, सुधीसुजन मतिमान ॥ ४४ ॥
कलावन्त कोविदकुशल, सुमन दक्ष धीमंत ।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन सन्त ॥ ४५ ॥

अथ मुनीश्वरके नाम ।

दोहा--मुनि महंत तापस तपी, भिक्षुकचारित धाम ।

यती तपोधन संयमी, व्रतीसाधु रिषिनाम ॥ ४६ ॥
दरस विलोकन देखनो, अवलोकन दृग चाल।
लखन दृष्टिनिरखनभुवन,चितवनचाहनभाल ॥ ४७॥
ज्ञान बोध अवगममनन, जगतभान जगजान।
संयम चारितआचरण, चरन वृत्ति थिरवान ॥ ४८ ॥
सम्यक् सत्य अमोघसत, निसंदेह निरधार।
ठीकयथारथ उचिततथ, मिथ्या आदिअकार ॥ ४९ ॥
अजथारथमिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक।
मुधामोघनिष्फलवितथ,अनुचितअसतअठीक॥५०॥

सवैया इकतीसा--जीव निरजीव करता करम पुण्य पाप, आश्रव संवर निरजराबंध मोषहै। सरवविशुद्ध स्यादवाद साधिसाधक दुआसद दुवार धरे समैसार कोष है॥ दरवानुयोग दरबानुयोग दूरिकरै, निगमको नाटक परमरस पोषहै। ऐसो परमागम बनारसी बखाने यामे, ज्ञानको निदान शुद्ध चारित की चोष है ॥ ५१ ॥

दोहा--शोभित निजअनुभूतियुत,चिदानंद भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥ ५२ ॥

सवैया तेईसा--जो अपनी दुति आपु विराजत, है परधान पदारथ नामी। चेतन अंक सदा निकलंक, महासुखसागर को विसरामी ॥ जीव अजीव जिते जगमें, तिनको गुन ग्यायक अंतरजामी। सो शिवरूप वसै शिवथानक, ताहि बिलोकनमें शिवगामी ॥ ५३ ॥

सवैया तेईसा--जोग धरै रहि जोगसुं भिन्न अनंत गुनातम केवल ज्ञानी। तासहृदे द्रहसों निकसी सरिता सम है

श्रुत सिंधु समानी ॥ यातें अनंत नयातम लच्छन, सत्य सरूप सिद्धांत बखानी। बुद्धि लखै न लखै दुर बुद्धि सदा जग मांहि जगे जिनबानी ॥ ५४ ॥

छप्पय छंद—हों निहचें तिहुँकाल, शुद्ध चेतनमय मूरति। पर परिनति संयोग, भई जडता बिस्फूरति ॥ मोह कर्मपर हेतु, पाइ चेतन पर रच्चे। ज्यों धतूर रसपान, करत नर बहु विध नच्चे ॥ अब समय सार वर्णन करत, परम शुद्धता होउ मुझ। अनयास बनारसि दास कहि, मिटो सहज भ्रमकी अरुझ ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा--निहचैमें रूप एक विवहार में अनेक, याही नै विरोध में जगत भरमायो है। जगके विवाद नासिबेकों जिन आगम है, जामें स्यादवाद नाम लक्षन सुहायो है ॥ दरसन मोह जाको गयो है सहजरूप, आगम प्रवान जाके हिरदमें आयो है। अनैसो अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसो पद पूरन तुरत तिन पायो है ॥ ५६ ॥

सवैया तेईसा--ज्यों नर कोउ गिरै गिरसों तिह, सोइ हितू जु गहै दृढ बांही। त्यों बुधकों विवहार भलो तवलों, जवलों शिव प्रापति नांहीं ॥ यद्यपि यों परवान तथापि, सधै परमारथ चेतनमांहीं। जीव अव्यापक है परसों, विवहार सु तो परकी परछांहीं ॥ ५७ ॥

सवैया इकतीसा--शुद्ध नय निहचै अकेलो आपु चिदानंद, अपनेही गुण परजायकों गहतुहै। पूरन विज्ञान घन सोहै विवहार मांहि, नवतत्वरूपी पंच द्रव्यमें रहतुहै ॥ पंच द्रव्यनवतत्व न्यारे जीव न्यारो लखै। सम्यक दरस यहै

उरतैन गहतु है, सम्यक दरस जोई आतमसरूप सोई ॥ मेरे घट प्रगटयो बनारसी कहतुहै ॥ ५८ ॥

सवैया इकतीसा-जैसे तृनकाठ बांस आरनै इत्यादि और, इंधन अनेक विधि पावक में दहिये। आकृति विलोकत कहावै आगि नानारूप, दीशै एक दाहक सुभाउ जब गहिये॥ तैसै नव तत्व में भयो है वहु भेखी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये। जाही छिन चेतनाशकतिको विचार कीजै, ताही छिन अलख अभेदरूप लहिये ॥ ५९ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे बनबारी में कुधातुके मिलाप हेम, नाना भांति भयो पै तथापि एक नाम है। कसिके कसोटी लीक निरखे सराफ तांही, बानके प्रमान करि लेतु देतु दामहै॥ तैसेही अनादि पुद्गलसों संयोगी जीव, नवतत्त्वरूप में अरूपी महा धाम है। दीशे उनमानसो उद्योत वान ठौर ठौर, दूसरौ न और एक आतमाहि राम है॥ ६० ॥

सवैया इकतीसा--जैसे रविमंडल के उदै महिमंडल में, आतप अटल तम पटल विलातु है। तैसे परमातमाको अनुभौ रहत जो लौं, तो लौं कहूं दुविधा न कहू पच्छपातु है॥ नयको न लेश परवानकोन परवेश, निछेपके वंसको विधंस होतु जातुहै, जे जे वस्तु साधक हैं तउ तहां बाधक हैं बाकी रागदोष की दशाकी कौन बातु है॥ ६१ ॥

अडिल्ल छंद--आदि अंत पूरन सुभाव संयुक्त है, परस्वरूप परजोग कलपना मुक्त है। सदा एकरस प्रगट कही है जैनमें, शुद्ध नयातमवस्तु विराजे वैनमें॥ ६२॥

कवित्त छंद-सतगुरु कहै भव्य जीवनिसों, तोरहु तुरतमो-

हकी जेल। समकितरूप गहो अपनो गुन, करहु शुद्ध अनुभव को खेल॥ पुदगल पिंडभाव रागादिक, इनसों नहीं तुमारो मेल। एजड प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोयअरुतेल६३

सवैया इकतीसा--कोउ बुद्धिवंत नर निरखेशरीर घर, भेद ज्ञान दृष्टिसों विचारै वस्तु वासतो। अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भिग्यो चिदानंद लखे बंधमें विलासतो॥ बंधको विडारि महा मोहको सुभाउ डारि आतमको ध्यान करी देखो परगासतो। करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप अचल अबाधित विलोकै देव सासतो ॥ ६४॥

सवैया तेईसा--शुद्ध नयातम आतमकी अनभूति विज्ञान विभूतिहि सोई, वस्तु विचारत एक पदारथ नामक भेद कहावत दोई। यों सरवंग सदा लखि आपुहि, आतमध्यान करे जब कोई ॥ मेटि अशुद्धि बिभावदशा तब सिद्ध सरूप कि प्रापति होई ॥ ६५ ॥

सवैया इकतीसा--अपनेही गुनपरजायसों प्रवाहरूप,परिनयो तिहूं काल अपने आधारसों। अंतर बाहिर परकासवान एकरस, खिन्नता न गहै भिन्न रहै भौ विकारसों ॥ चेतनाके रस सरवंग भरि रह्यो जीव, जैसे लोंन काकर भर्यो है रस छारसों ॥ पूरन सरूप अति उज्जल विज्ञान घन, मोकों होहु प्रगट विशेष निरवारसों । ६६ ॥

कवित्त छंद—जहँ ध्रुव धर्म कर्म छय लच्छन, सिद्ध समाधि साध्यपद सोइ । सुधो पयोग योग महि मण्डित, साधक ताहि कहै सबकोइ ॥ यों परतच्छ परोक्ष स्वरूप, सुसाधक साध्य अवस्था दोइ । दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवै शिव वंछक थिर होइ ॥ ६७ ॥

कवित्त छंद--दर्शन ज्ञान चरन त्रिगुनातम, समल रूप कहिये विवहार। निहचे दृष्टि एकरस चेतन, भेदरहित अविचल अविकार॥ सम्यक् दशा प्रमाणउभैनय, निर्मलसमल एकही वार। यों समकाल जीवकी परिनति कहें जिनंद गहे गनधार॥ ६८॥

दोहा--एक रूप आतम दरव, ज्ञान चरन दृगतीन।
भेद भाव परिनाम सों, विवहारे सु मलीन॥ ६९॥
यदपि समल विवहारसों, पर्यय शक्ति अनेक।
तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक॥ ७०॥
एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समलविमलन विचारिये, यहेसिद्धिनाहि और॥ ७१॥

सवैया इकतीसा--जाके पद सोहत सुलच्छन अनंत ज्ञान, विमल विकासवंत ज्योति लहलही है। यद्यपि त्रिविध रूप व्यवहार में तथापि, एकता न तजे यों नियत अंग कही है॥ सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करिवे कों मेरी मनसा उमही है। जातें अविचल सिद्धिहोतु और भांति सिद्ध, नांहि नांहि नांहि यामें धोखो नांहिसही है॥ ७२॥

सवैया तेईसा--के अपनो पद आपु सँभारत, के गुरके मुखकी सुनि बानी। भेद विज्ञान जग्यो जिनके प्रगटे सु विवेक कला रज धानी॥ भाव अनंत भये प्रतिविंवत, जीवन मोच्छ दशा ठहरानी। तेनर दर्पनज्यों अविकार रहै थिर रूप सदा सुखदानी॥ ७३॥

सवैया इकतीसा--याही वर्त्तमान समै भव्यनिको मिथ्यो मोह, लग्यो है अनादिको पग्यो है कर्म मलसों। उदो करै

भेदज्ञान महारुचिको निधान, उरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसों ॥ याते थिर रहै अनुभौ विलास गहै फिरि कबहों, अपनपो न कहै पुद्गलसों । यहै करतूतियों जुदाई करै जगतसों, पावकज्यों भिन्न करै कंचन उपलसों ॥७४॥

सवैया इकतीसा--बानारसी कहै भैया भव्य सुनो मेरी शीख, केहू भांति कैसेहू के ऐसो काज कीजिए । एकहू मुहूरत मिथ्यातको विध्वंस होइ, ज्ञानको जगाइ अंस हंस खोजि लीजिये ॥ वाहीको विचार वाको ध्यानयहै कौतुहल, योंही भरि जनम परम रस पीजिए । तजी भववासको विलास सविकासरूप, अंतकरि मोहको अनंतकाल जीजिए॥

सवैया इकतीसा--जाकी देहद्युतिसों दसो दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके हैं । जाको रूप निरखि थकित महारूपवंत, जाकी वपुवाससों सुवास और लुके हैं ॥ जाकी दिव्य धुनी सुनि श्रवनकों सुख होत, जाके तन लच्छन अनेक आइ ढूके हैं । तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै निरखि सुद्धचेतनसों चुकेहैं ॥७६॥

सवैया इकतीसा--जामें बालपनोतरुनपनो वृद्धपनोनांहि, आयु परजंत महा रूप महा बल है । बिनाहि जनत जाके तनमें अनेक गुन,अतिसै विराजमान काया निरमलहै ॥ जैसे विनुपवन समुद्र अविचलरूप, तैसे जाको मन अरु आसन अचल है । ऐसो जिनराज जयवंत होउ जगत में, जाकी शुभगति महा सुकृति को फल है ॥ ७७ ॥

दोहा--जिनपद नाहिं शरीरकों,जिनपद चेतन मांहि ।
जिन वर्नन कछु और है, यहजिन वर्ननांहि ॥ ७८ ॥

सवैया इकतीसा--उंचे उंचे गढके कंगुरे यों विराजत हैं, मानो नभ लोक लीलवेकों दांत दियो है। सोहे चिहोंउर उपबनकी सघनताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेरिलियो है॥ गहरी गंभीर खाईताकी उपमा बनाई, नीचो करि आनन पतालजल पियो है। ऐसो है नगर यामें नृपको न अंगकोउ, योंही चिदानंदसों शरीर भिन्न कियोहै ॥ ७९ ॥

सवैया इकतीसा--जामें लोकालोक के सुभाउ प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान सगति विमल जैसी आरसी। दर्शन उदोत लियो अंतराय अंतकीऊ, गयो महामोह भयो परम महारसी ॥ सन्यासी सहज जोगी जोगसों उदासी जामें, प्रकृति पंचाशी लगि राहि जरिछारसी। सोहै घटमंदिर में चेतन प्रगटरूप, ऐसो जिनराज तांहि वंदतबनारसी॥८०॥

कवित्त छंद--तनु चेतन विवहारएकसें,निहचे भिन्नभिन्न है दोइ। तनुस्तुती विवहार जीव थुति, नियत दृष्टिमिथ्या थुति सोइ ॥ जिनसो जीव जीव सो जिनवर, तनु जिनएक न मानै कोइ। ताकारन तनकी अस्तुतिसों, जिनवर की अस्तुति नाहि होइ ॥ ८१ ॥

सवैया तेईसा--ज्यों चिरकाल गडी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूझी। कोउ उखारि धरै महि ऊपरि, जो दृगवंत तिन्है सबसूझी ॥ त्योंयह आतमकी अनुभूति पगी जड भाव अनादि अरूझी। नैजुगतागम साधि कही गुरु, लक्षन वेदि विचच्छन बूझी ॥ ८२ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे कोउ जन गयो धोबी के सदन तिन्ह, पहिरयो परायो वस्त्र मेरो मानि रह्यो है। धनीदेखि

कह्यो भैया यहु तो हमारो वस्त्र, चीन्हो पहिचानतहीं त्याग भाव लह्यो है ॥ तैसेही अनादि पुद्गलसों संयोगी जीव, संग के ममत्वसों बिभावतामें बह्यो है । भेद ज्ञानभयो जब आपो पर जान्यो तब, न्यारो परभाव सों स्वभाव निज गह्यो है ॥ ८३ ॥

अडिल्लछंद--कहै विचच्छण पुरुष सदाहौं एकहौं । अपने रससों भर्यो आपनी टेक हौं ॥ मोह कर्म मम नांहि नांहि भ्रम कूप है । शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है॥ ८४ ॥

सवैया इकतीसा--तत्वकी प्रतीति सों लख्यो है निजपर गुन, दृग ज्ञान चरन त्रिविध परिनयो है । विसद विवेक आयो आछौ विसराम पायो, आपही में आपनो सहारो सोधि लयो है ॥ कहत बनारसी गहत पुरुषारथकों, सहज सुभाउसों विभाउ मिटि गयो है । पन्नाके पकाय जैसे कंचन विमल होतु, तैसे शुद्ध चेतन प्रकाशरूप भयो है ॥ ८५ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे कोउ पातर बनाय वस्त्र आभरण, आवति अखारे निशि आडो पट करिके । दुहू उर दीवटि सँवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोगदेखें दृष्टि धरिके॥ तैसे ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेद करि, उमग्यो प्रकट रह्यो तिहुँलोक भरिके। ऐसो उपदेशसुनि चाहिये जगतजीव शुद्धता सँभार जगजालसों निकरिके ॥ ८६ ॥

इतिश्रीनाटिकासमयसारका प्रथमजीवद्वारसमाप्तभया ।

दूसराअध्याय अजीवद्वार।

दोहा--जीव तत्व अधिकार यह, कह्यो प्रकट समुझाइ।
अब अधिकार अजीवको,सुनोचतुर मनलाइ॥८७॥

सवैया इकतीसा--परम प्रतीत उपजाइ गनधर कीसी, अंतर अनादि की विभावता बिदारीहै। भेद ज्ञान दृष्टि सों विवेककी सकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है॥ करमको नास करी अनुभौ अभ्यास धारी, हियेमें हरष निज शुद्धता सँभारी है। अंतराय नास गयो शुद्ध परकास भयो, ज्ञानको बिलास ताकों बंदना हमारी है॥ ८८॥

सवैया इकतीसा-- भैया जगवासीतूं उदासी ह्वैके जगत सों, एक छः महीना उपदेश मेरो मानुरे। और संकलप विकलपके विकार तजि, बैठके एकंतमन एकठौर आनुरे। तेरो घट सर तामें तुंहीहै कमल ताकों, तुंही मधुकरहै सुवास पहिचानुरे। प्रापति न ह्वैहै कछु ऐसो तुं बिचारतुहै, सही ह्वैहै प्रापति सरूप याही जानुरे॥ ८९॥

दोहा--चेतनवन्त अनंत गुण, सहित सुआतम राम।
याते अनमिल और सब, पुद्गलके परिणाम॥९०॥

कवित्त छंद--जब चेतन सँभारि निज पौरुष, निरखै निज दृगसों निज मर्म। तब सुखरूप विमल अविनाशक जानै जगत शिरोमनि धर्म॥ अनुभौ करै शुद्ध चेतन को, रमै सुभाव वमै सब कर्म। इहि विधि सधै मुक्तिकोमारग अरु समीप आवै शिव शर्म॥ ९१॥

दोहा--बरनादिक रागादि जड़, रूप हमारो नांहि।
एक ब्रह्म नहिं दूसरो, दीसे अनुभव मांहि॥९२॥

खांडो कहिये कनकको, कनक म्यान संयोग ।
न्यारो निरखतम्यानसों, लोह कहैं सबलोग ॥ ९३ ॥
वरनादिक पुद्गल दशा, धरे जीव बहु रूप ।
वस्तु विचारत करमसों, भिन्न एक चिद्रूप ॥ ९४ ॥
ज्यों घट कहिये घीउकों, घटको रूप न घीउ ।
त्यों बरनादिक नामसों, जडतालहै न जीउ ॥ ९५ ॥
निराबाध चेतन अलख, जाने सहज सुकीउ ।
अचलअनादि अनंतनित, प्रकटजगतमेंजीउ ॥ ९६ ॥

सवैया इकतीसा--रूप रसवंत मूरतीक एक पुद्गल, रूप बेन ओर यूं अजीव दर्व दुधा है । च्यारि हैं अमूरतिक जी- वभी अमूरतिक, याहितें अमूरतिक वस्तु ध्यान मुधाहै । और गों न कबहूं प्रगट आपु आपही सों, ऐसो थिर चेतनसुभाउ गुद्ध सुधाहै । चेतनको अनुभौ आराधे जग तेई जीउ, जिन्ह ो अखंडरस चाखिबेकी छुधा है ॥ ९७ ॥

सवैया तेईसा--चेतन जीव अजीव अचेतन, लछन भेद उभै पद न्यारे । सम्यक दृष्टि उद्योत विचक्षण, भिन्न लखे लखिके निरधारे ॥ जे जग मांहि अनादि अखंडित, मोह महामद के मतवारे । ते जड चेतन एक कहे, तिन्हकी फिरि टेक टरे नहिं टारे ॥ ९८ ॥

सवैया तेईसा--या घटमें भ्रमरूप अनादि, विलास महा अविवेक अखारो । तामँहि उर सरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करें अतिभारो । फेरत भेष दिखावत कौतुक, सो ज- लिये वरनादि पसारो । मोहसुं भिन्न जुदो जड सों, चिन रति नाटक देखनहारो ॥ ९९ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे करवत एक काठ बीचि खंडकरै, जैसे राजहंस निरवारे दूध जलकों । तैसे भेद ज्ञान निज भेदक शकतिसैंति, भिन्न २ करै चिदानन्द पुद्गलकों । अवधि कों ध्यावै मनपर्यै की अवस्था पावै, उमगि के आवै परमावधि के वलकों । याहीभांति पूरनसरूपको उद्योत धरै, करै प्रतिबिंबत पदारथ सकलकों ॥ १०० ॥

इतिश्रीनाटककादूसराअजीवद्वारसमाप्तभया ।

तीसराअध्यायकर्त्ताकर्मक्रियाद्वार।

दोहा--यह अजीवअधिकारको, प्रगट बखान्योममर्म ।
अब सुनु जीव अजीवके, कर्त्ता किरियाकर्म ॥ १०१ ॥

सवैया इकतीसा--प्रथम अज्ञानी जीव कहै मैं सदीव एक दूसरो न और मैंही करता करमको । अंतर विवेक आयो आपापर भेद पायो, भयो बोध गयो मिटी भारतभरमको॥ भासे छहों दरबके गुण परजाय सब, नासै दुःख लख्योमुख पूरन परमको । करमको करतार मान्योपुदगल पिंड, आपु करतार भयो आतम धरम को ॥ २ ॥ जाहि समै जीव देह बुद्धिको बिकार तजै, वेदत सरूप निज भेदत भरम को । महा परचंड मति मंडन अखंड रस, अनुभौ अभ्यास परकासत परमको॥ ताही समै घटमें न रहै विपरीत भाव, जैसे तम नासै भानु प्रगट धरमको। ऐसी दशा आवै जब साधक कहावैतव, करता ह्वै कैसे करै पुद्गल करमको ॥ ३ ॥

सवैया इकतीसा--जग में अनादि को अज्ञानी कहै मेरो कर्म, करता मैं याको किरियाको प्रतिपाखी है । अंतर सु-

मति भासी योगसों भयो उदासी, ममता मिटाय परजाय बुद्धि नाखी है ॥ निरभै सुभाव लीनो अनुभौके रस भीनो, कीनो व्यवहार दृष्टिनिहचैमें राखी है । भरमकी दोरी तोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीतिजोरी करमको साखीहै॥४॥

सवैया इकतीसा--जैसो जो दरव ताके तैसे गुन परजाय, ताहुसों मिलत पैंमिले न काहु आनसों। जीव वस्तु चेतन करम जड जाति भेद, अमिल मिलाप ज्यों नितंब जुरे कानसों ॥ ऐसो सुविवेक जाके हिरदे प्रगट भयो, ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भग्यो भानसों। सोई जीव करम को करतासो दीसेपें अकरता कह्योहै शुद्धता के परवानसों ॥ ५ ॥

छप्पय छंद--जीव ज्ञान गुण सहित, आपगुण परगुण ज्ञायक । आपा परगुन लखे, नांहिं पुद्गल इहिलायक। जीव रूप चिद्रूप, सहज पुद्गल अचेत जड, जीव अमूरति मूर तीक पुद्गल अंतर बड ॥ जबलग न होय अनुभव प्रगट तबलग मिथ्या मतिलसै । करतार जीव जड करमको, सुबुधि बिकाशक भ्रम नसै ॥ ६ ॥

दोहा--करता परिनामी दरव, करम रूप परिनाम ।
किरिया परजै की फिरन, वस्तु एक त्रयनाम ॥ ७ ॥
कर्त्ता कर्म क्रिया करै, क्रिया कर्म करतार ।
नाउ भेद बहुविधि भयो, वस्तु एक निरधार ॥ ८ ॥
एक कर्म कर्तव्यता, करै न कर्ता दोय ।
दुधा दरब सत्ता सुतो, एकभाव क्यों होय ॥ ९ ॥

सवैया इकतीसा--एक परिनामके न करता दरव दोय, दोय परिनाम एक दर्व न धरतु है । एक करतूति दोय दर्ब

कबहूं न करै, दोई करतूति एक दर्व न करतु है ॥ जीव पुद्गल एक खेत अवगाही दोई अपने २ रूप कोउ न टरतु है । जड परिनामनिको करताहै पुद्गल, चिदानन्द चेतन सुभाउ आचरतु है ॥ १० ॥

सवैया इकतीसा--महा टीठ दुःखको वसीठ पर दर्वरूप अंध कूप काहुपै निवार्‍यो नहि गयो है । ऐसो मिथ्याभाव लग्यो जीवकों अनादिहीको, याही अहंबुद्धि लिये नानाभांति भयो है । काहू समै काहूको मिथ्यात अंधकार भेद, ममता उछेदि शुद्ध भाउ परिनयो है । तिनही विवेक धारि बंधको बिलास डारि, आतम सकतिसों जगतजीति लयो है ॥११॥

सवैया इकतीसा--शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन दुहूं को करतार जीव और नहीं मानिये । कर्म पिंडको विलास वर्न रस गंध फास, करता दुहू को पुद्गल पर मानिये ॥ ताते वरनादि गुन ज्ञानावरनादि कर्म, नाना परकार पुद्गल रूप जानिये । समल बिमल परिनाम जे जे चेतन के, ते ते सब अलख पुरुष यों बखानिये ॥ १२ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे गजराज नाज घासके गरासकरि भक्षत सुभाय नाहि भिन्न रस लियो है । जैसे मतवारोनहि जाने सिखरनि स्वाद, जुंगमें मगनकहै गऊ दूध पियोहै ॥ तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञानरूपी है सदीव, पग्यो पाप पुन्य सों सहज सुन्न हियो है । चेतन अचेतन दुहूको मिश्र पिंड लखि, एकमेक माने न विवेक कछु कियो है ॥ १३ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे महाधूप की तपति में तिसी यो मृग, भरमसों मिथ्याजल पीवनकों धायोहै । जैसे अंधकार

मांहि जेवरी निरखि नर, भरमसों डरपी सरप मानि आयो है ॥ अपने सुभाय जैसे सागर सुथिर सदा, पवन संजोग सों उछरि अकुलायो है। तैसे जीव जडजों अव्यापक सहज रूप, भरमसों करमको करता कहायो है ॥ १४ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे राजहंसके वदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो छीर न्यारो नीर है। तैसे समकिती की सुदृष्टिमें सहजरूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोई शरीर है ॥ जब शुद्ध चेतनाको अनुभौ अभ्यासे तब, भासै आपु अचल न दूजो उर सीर है। पूरव करम उदे आइके दिखाई देहि, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे उसनोदकमें उदक सुभाउ सीरो, आगिकी उसनते फरस ज्ञान लखिये। जैसे स्वाद व्यंजन में दीसत विविध रूप, लोनको सवाद खारो जीभ ज्ञान चखिये ॥ तैसे याहि पिंडमें विभावता अज्ञानरूप, ज्ञानरूप जीव भेद ज्ञानसों परखिये। भरमसों करमको करताहै चिदानंद दरव विचार करतार भाव नखिये ॥ १६ ॥

दोहा--ज्ञानभाव ज्ञानी करै, अज्ञानी अज्ञान।
दरब करम पुद्गल करै, यहानिहचै परवान ॥ १७ ॥
ज्ञानसरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और।
दर्व कर्म चेतन करै, यह विवहारी दौर ॥ १८ ॥

सवैया तेईसा--पुद्गल कर्म करै नहि जीव कही तुम मैं समुझी नहि तैसी। कौन करै यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी ॥ आपुहि आपु मिलै विछुरै जड क्यों करि मोमन संशय ऐसी। शिष्य संदह निवारन कारन वात कहै गुरु है कछु जैसी ॥ १९ ॥

दोहा--पुदगल परिनामी दरब, सदा परिनमै सोय ।
याते पुदगल करमको, पुदगल कर्त्ता होय ॥ २० ॥

अडिल छंद--ज्ञानवन्त को भोग निर्जरा हेतु है । अज्ञानीको भोग बंध फल देतु है ॥ यह अचरज की बात हिये नहिं आवही । बूझै कोऊ शिष्य गुरू समुझावही ॥ २१ ॥

सवैया इकतीसा--दया दान पूजादिक विषय कषायादिक दोहू कर्म भोग पै दुहूको एक खेतुहै । ज्ञानीमूढ करम करत दीसे एकसे पै, परिनाम भेद न्यारो २ फल देतु है ॥ ज्ञान वन्त करनी करै पें उदासीन रूप, ममता न धरै ताते निर्जरा को हेतु है । वहे करतूति मूढ करै पै मगन रूप, अंध भयो ममता सो बंध फल लेतु है ॥ २२ ॥

छप्पय छन्द--ज्यों माटीमहि कलस, होनकी शक्ति रहै ध्रुव । दंड चक्र चीवर कुलाल बाहिज निमित्त हुव ॥ त्यों पुदगल परवानु, पुंज बरगना भेष धरि । ज्ञानी बरनादिक सरूप विचरंत विविध परि । बाहिज निमित्त वहिरातमा, गहि संसै अज्ञान मति । जगमांहि अहंकृत भावसों, करम रूप व्है परिनमति ॥ २३ ॥

सवैया तेईसा--जे न करै नयपक्ष विवाद, धरै न विषाद अलीक न भाखै । जे उदवेग तजै घट अन्तर, शीतलभाव निरन्तर राखै ॥ जेन गुनी गुन भेद विचारत, आकुलता मनकी सब नाखै । ते जगमें धरि आतम ध्यान अखंडित ज्ञान सुधारस चाखै ॥ २४ ॥

सवैया इकतीसा--विवहार दृष्टि सों बिलोकत बँध्यो सो दीसे, निहचे निहारत न बांध्यो यह किनही । एकपक्ष बंध्यो

एक पक्ष सों अबंध सदा, दोउ पक्ष अपने अनादि धरे इन ही ॥ कोउ कहै समल बिमल रूप कोउ कहै, चिदानन्द तैसोई बखान्यो जैसो जिनही । बंध्यो मानै खुल्यो मानै दुहुनको भेद जानै, सोई ज्ञानवन्त जीवतत्व पायो तिनही २५

सवैया इकतीसा--प्रथम नियत नय दूजो विवहार नय दुहुकों फलावत अनंत भेद फलै है । ज्यों २ नय फलै त्यों त्यों मनके कलोल फलै, चंचल सुभाय लोकालोक लों उछलै है । ऐसी नय कच्छ ताको पक्ष तजि ज्ञानी जीव समरसी भये एकतासों नहीं टलै है । महा मोह नासै शुद्ध अनुभौ अभ्यासै निज, बल परगासै सुखरासि माहिं रलै है॥२६॥

सवैया इकतीसा--जैसे काहु बाजीगर चौहटे बजाइढोल, नानारूप धरीके भगल विद्या ठानी है । तैसे में अनादिको मिथ्यात के तरंगनिसों भरम में धाइ बहुकाइ निजमानी है ॥ अब ज्ञानकला जागी भरमकी दृष्टि भागी, अपनी पराई सबसों जु पहिचानी है । जाके उदे होत परवान ऐसी भांति भई, निहचे हमारी ज्योति सोई हम जानी है ॥२७॥

सवैया इकतीसा--जैसै महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग जैसे लीनहोइ जलमें । तैसे शुद्ध आतम दरबपरजाय करी, उपजे बिनसे थिर रहे जिन थल में ॥ ऐसे अविकलपी अजलपी आनंद रूपी, अनादि अनंत गहिलीजे एक पलमें । ताको अनुभव कीजे परम पिऊष पीजे, बंधको विलास डारि दीजे पुगदल में ॥ २८ ॥

सवैया इकतीसा--दरवकी नय परजाय नय दोउ नय,श्रुत ज्ञानरूप श्रुतज्ञान तो परोषहै । शुद्ध परमातमाको अनुभौ

प्रगटतातें,अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोषहै॥अनुभौप्रवान भगवान पुरुष पुरान,ज्ञानऔ विज्ञानघन महा सुख पोषहै॥ परम पवित्र योंही अनुभौ अनंत नाम, अनुभौ विना न कहो और ठोर मोष है ॥ २६ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे एक जल नाना रूप दरवानुयोग, भयो वहु भांति पहिचान्यो न परतुहै । फिरि काल पाई दरवानुयोग दूरि होतु, अपने सहज नीचे मारग ढरतु है॥ तैसे यह चेतन पदारथ विभावतासों, गति योनि भेष भव भावर भरतु है । सम्यक सुभाइ पाइ अनुभौके पंथ धाइ, बंधकी जुगती भानि मुगति करतु है॥३०॥

दोहा—निशिदिन मिथ्या भावबहु,धरैमिथ्यातीजीव॥
तातै भावित करमको, करता कह्यो सदीव ॥ ३१ ॥

चौपाई--करै करमसोई करतारा। जोजानैसो जाननहारा॥
जोकर्त्तानहिजानै सोई।जानै सो करतानहिहोई॥३२॥

सोरठा--ज्ञानमिथ्यात न एक, नहि रागादिक ज्ञानमहि ।
ज्ञानकरम अतिरेक, जो ज्ञाता करतानहीं ॥३३॥

छप्पय छन्द--करमपिंड अरु राग, भाव मिलि एक होहि नहिं । दोऊ भिन्न स्वरूप, बसहि दोऊ न जीव महि॥ करम पिंड पुदगल बिभाव रागादि मूढ भ्रम । अलख एक पुद्गल अनंत, किम धरहि प्रकृति सम । निज निज बिलास युत जगत महि जथा सहज परिनमहि तिम । करतार जीवजड करमको, मोहविकल जन कहहि इम ॥ ३४ ॥

छप्पय छंद-जीव मिथ्यात न करै भाव नहि धरै भरम मल । ज्ञान २ रसरमै, होइ करमादिक पुदगल । असंख्यात

परदेश, सकति जगमें प्रगटे अति ॥ चिद विलास गंभीर, धीर थिररहे विमल मति । जब लागि प्रबोध घटमहि उदित तबलग अनय न पेखिये ॥ जिम धरमराज वरतांतपुर, जह तह नीति परोखिये ॥ ३५ ॥

इतिश्री नाटकसमैसार कर्त्ताकर्मक्रियाद्वार तृतीय समाप्तं.

चौथा अध्याय पापपुन्यद्वार ।

दोहा—करता क्रिया करमको, प्रगट बखान्यो मूल ।
अब बरनौं अधिकार यह, पापपुन्य समतूल ॥ ३६ ॥

कवित्त छंद--जाके उदे होत घटअंतर, विनसे मोह महातम रोक । सुभ अरु अशुभ करमकी दुविधा, मिटे सहज इकथोक ॥ जाकी कला होतु संपूरन, प्रतिभासे सब लोक अलोक । सो प्रबोध शशि निरखि बनारसि, सीश नमाइ देतु पगधोक ॥ ३७ ॥

सवैया इकतीसा--जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन्ह, एक दियो बामन कूं एक घर राख्यो है । बामन कहायो तिन्ह मद्य मांस त्याग कीनो, चंडाल कहायो तिन मद्य मांस चाख्यो है ॥ तैसे एक वेदनी करमके जुगलपुत्र एक पाप एक पुण्य नांउ भिन्न भाख्यो है । दुहों माहिं दोरधूप दोउ कर्म बंधरूप, याते ज्ञानवंत ने न कोउ अभिलाख्यो है ॥ ३८ ॥

चौपाई--कोऊ शिष्य कहे गुरुपांहीं । पापपुण्य दोऊसम नाहीं ॥

कारनरस सुभावफलन्यारे।एकअनिष्टलगेइकप्यारे३९

सवैया इकतीसा--संकिलेस परिनामनिसों पाप बंध होइ, विशुद्धसों पुन्य बंधु हेतु भेद मानिये। पापके उदे असाता ताको है कटुक स्वाद,पुन्य उदे सातामिष्ट रसभेद जानिये॥ पाप संकिलेस रूप पुन्यहिं विशुद्ध रूप, दुहूंको सुभाउ भिन्न भेदयों बखानिये। पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगतिहोय, ऐसा फल भेद परतक्ष परवानिये॥ ४०॥

सवैया इकतीसा--पाप बंध पुन्य बंध दुहूमें मुगति नांहि कटुक मधुर स्वाद पुद्गलको पेखिये। संकिलेस विशुद्धि सहज दोउ कर्म चालि, कुगति सुगति जग जालमें विशेखिये॥ कारनादि भेद तोहि सूझत मिथ्यातमांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञानदृष्टिमें न लेखिये। दोउ महा अंधकूप दोउ कर्म बंध रूप, दुहूको विनास मोष मारगमें देखिये॥ ४१॥

सवैया इकतीसा--सीलतप संजम विरति दान पूजादिक, अथवा असंजम कषाय विषै भोग है। कोउ शुभरूप कोउ अशुभ सरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है॥ ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरम में करम त्याग जोग है। भौजल तरैया राग दोषको हरैया महा मोपको करैया एक शुद्ध उपयोग है॥ ४२॥

सवैया इकतीसा–शिष्य कहै स्वामी तुम करनी शुभ अशुभ, कीनी है निषिद्ध मेरे संसो मनमांहि है। मोषके सधैया ज्ञाना देस विरती मुनीस, तिन्हकी अवस्था तो निराव लंब नांहि है॥ कहै गुरु करमको न्यास अनुभौ अभ्यास ऐसो अवलंब उन्हहीको उनमांहि है। निरुपाधि आतम स-

माधि सोइ शिवरूप, और दौर धूप पुदगल परछांहि है॥४३॥

सवैया तेईसा—मोक्षसरूप सदा चिनमूरति बंधमई करतूतिकही है। जावतकाल वसै वह चेतन, तावत सो रसरीति गही है॥ आतमको अनुभव जबलौं, तबलौं शिवरूप दसा निवही है। अंध भयो करनी जब ठानत, बंध विथा तब फैलि रही है॥ ४४ ॥

सोरठा—अंतर दृष्टि लखाउ, अरु सरूपकोआचरण।
ए परमातम भाउ, शिवकारन एई सदा ॥ ४५ ॥
करम शुभाशुभदोइ, पुद्गलपिंडविभावमल।
इनसों मुगति न होइ, नांही केवल पाइए॥ ४६ ॥

सवैया इकतीसा--कोउ शिष्य कहै स्वामी अशुभ क्रिया अशुद्ध, शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी। गुरु कहै जबलौं क्रियाको परिणाम रहै, तबलों चपल उपयोग योग धरनी। थिरता न आवै तोलों शुद्ध अनुभौ न होइ, यातेदोऊ क्रिया मोषपंथ की कतरनी। बंध की करैया दोउ दुहू में न भली कोऊ, बाधक बिचार में निषिद्ध कीनी करनी ॥ ४७ ॥

सवैया इकतीसा--मुक्तिके साधककों बाधक करम सब, आतमा अनादि को करम मांहि लुक्यो है। एते परि कहै जो कि पाप बुरो पुण्य भलो, सोइ महामूढ मोक्ष मारगसों चुक्यो है॥ सम्यक् सुभाव लिये हिये में प्रगट्यो ज्ञान, उरध उमँगि चल्यो काहूपे न रुक्यो है। आरसी सो उज्वल वनारसी कहत आपु, कारन सरूपह्वैके कारजकों ढुक्योहै४८

सवैया इकतीसा--जोलौं अष्टकर्मको विनास नाहीं सर्वथा तोलौं अंतरातमा में धारा दोई वरनी। एक ज्ञानधारा एक

शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी ध-
रनी । ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्ष की करनहार, दोष की
हरनहार भौ समुद्र तरनी । इतनो विशेष जु करम धारा
वंधरूप, पराधीन सकति विविधि वंध करनी ॥ ४९ ॥

सवैया इकतीसा--समुझै न ज्ञान कहै करम किये सों
मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें । ज्ञानपक्ष गहै
कहै आतमा अवंध सदा, वरते सुछंद तेउ धूडे हैं चहलमें।
जथायोग करम करे पैं ममता न धरै, रहै सावधान ज्ञान
ध्यान की टहल में ॥ तेई भवसागर के ऊपर ह्वै तरै जीव
जिन्हको, निवास स्यादवादके महल में ॥ ५० ॥

सवैया इकतीसा--जैसे मतवारो कोउ कहै और करै और
तैसे मूढ प्राणी विपरीतता धरतु है । अशुभ करमवंध का-
रन वखानै मानै, मुगतिके हेतु शुभ रीति आचरतु है ॥
अंतर सुदृष्टि भई मूढता विसरि गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम
तिमिर हरतु है । करन सों भिन्न रहै आतम आतम सरूप
गहै, अनुभौ आरंभि रस कौतुक करतु है ॥ ५१ ॥

इतिश्री नाटक समयसारका पुन्य पाप एकत्वी कथन चतुर्थ द्वार संपूर्णः ।

पंचम अध्याय आश्रव द्वार ।

दोहा--पुन्य पापकी एकता, बरनी अगम अनूप ।
अब आश्रव अधिकार कछु, कहौं अध्यातमरूप ॥ ५२ ॥

सवैया इकतीसा--जे जे जगवासी जीव थावर जंगम
रूप, ते ते निज बस करी राखे बल तोरिके । महा अभि-

मानी ऐसो आश्रव अगाध जोधो रोपि रनथंभ ठाढो भयो मूछ मोरिके ॥ आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फोरिके। आश्रव पछार्यो रन थंभ तोरि डार्यो ताहि, निरखी बनारसी नमत कर जोरिके५३

सवैया तेइसा--दार्वित आश्राव सो कहिये जहिं पुद्गल जीव प्रदेस गरासै । भावित आश्रव सो कहिए जहिं राग विरोध विमोह विकासै ॥ सम्यक पद्धति सो कहिये जहिं दार्वित भावित आश्रव नासै । ज्ञानकला प्रगटै तिहि थानक अंतर बाहरि और न भासै ॥ ५४ ॥

चौपाई छंद--जो दरवाश्रवरूप न होई । जह भावाश्रव भाव न कोई ॥ जाकी दशा ज्ञानमय लहिये । सो ज्ञातार निराश्रव कहिये ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा--जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक भाव तिन्हके विनासवेको उद्यम धरतु है। याहि भांति परपरिनतिको पतन करे, मोख को यतन करै भौजल तरतु है। ऐसै ज्ञानवन्तते निराश्रव कहावै सदा, जिन्हको सुजस सुविचक्षण करतु है ॥ ५६ ॥

सवैया इकतीसा--ज्यों जगमें विचरै मतिमंद सुछन्दसदा वरतै बुध तैसे । चंचल चित्त असंजत वैन, शरीर सनेह जथावत जैसे ॥ भोग संजोग परिग्रह संग्रह, मोह विलास करै जहाँ ऐसे। पूछत शिष्य आचारजसों, यह सम्यकवन्त निराश्रव कैसे ॥ ५७ ॥

सवैया इकतीसा--पूरव अवस्था जे करमबंध कीने अब, तेई उदै आई नाना भांति रस देत हैं। केई शुभ शाता

केई अशुभ असातारूप, दुहुसों न राग न विरोध सम चेत हैं ॥ यथायोग क्रिया करै फलकी न इच्छा धरै, जीवन मुगतिको विरुद गहिलेत हैं । यातें ज्ञानवंतकों न आश्रव कहत कोउ, मुद्धतासों न्यारे भये सुद्धता समेत हैं ॥ ५८ ॥

दोहा--जो हितभाव सुरागहै, अनहितभाव विरोध ।
आमकभाव विमोहहै, निर्मलभाव सुबोध ॥ ५९ ॥
राग विरोध विमोह मल, एई आश्रव मूल ।
एई कर्म बढाइ के, करै धरमकी मूल ॥ ६० ॥
जहां न रागादिक दसा, सो सम्यक परिनाम ।
यातें सम्यकवंतको, कह्यो निराश्रव नाम ॥ ६१ ॥

सवैया इकतीसा--जे कोई निकट भव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्या मतभेद ज्ञान भाव परिनये हैं । जिन्हकी सुदृष्टिमें न राग दोष मोह कहूं, विमल विलोकनि में तीनो जीति लये हैं ॥ तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलिगये हैं । तेई बंधपद्धति विडारि परसंग डारि आपुमें मगनव्है के आपुरूप भयेहैं॥६२॥

सवैया इकतीसा--जेते जीव पंडित खयोपशमी उपशमी तिन्हकी अवस्था ज्यों लुहारकी संडासी है । छिन आग मांहि छिन पानिमांहि तैसे एउ छिन में मिथ्यात छिनु ज्ञान कला भासी है ॥ जोलों ज्ञान रहै तोलों सिथिल चरन मोह जेसे कीले नगकी सगति गति नासीहै । आवत मिथ्यात तब नानारूप बंध करै जो उकीले नागकी प्रकृतिपरगासीहै॥६३॥

दोहा--यह निचोर या ग्रंथको, कहै परमरस पोष ।
तजे शुद्ध नयबंध है, गहै शुद्धनय मोष ॥ ६४ ॥

सवैया इकतीसा—करमके चक्रमें फिरत जगवासीजीव है रह्यो वहिर मुख व्यापत विषमता। अंतर सुमति आई विमल वडाई पाई, पुद्गल सों प्रीति टूटी छूटीमाया ममता॥ शुद्ध ने निवास कीन्हो अनुभौ अभ्यास लीन्हो, भ्रमभाव छांडि दीनो भिनो चित्त समता। अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलम्बी अवलोके राम रमता॥ ६५॥

सवैया इकतीसा—जाके परगास में न दीसे राग दोष मोह आश्रव मिटत नाहिं वंधको तरस है। तिहुंकाल जामें प्रतिविंवत अनंतरूप, आपुहू अनंत सत्तानंततें सरस है॥ भाव श्रुत ज्ञान परवान जो विचारि वस्तु, अनुभौ करे जहां न वानीको परस है। अतुल अखंड अविचल अविनासी धाम, चिदानन्द नाम ऐसो सम्यक दरस है॥ ६६॥

इतिश्रीनाटकसमयसारविषे आश्रवद्वारपंचमसंपूर्णम्।

छठा अध्याय संवरद्वार।

दोहा—आश्रवको अधिकारयह, कह्यो यथावत जेम।
अब संबर बरनन करों, सुनो भविक धरिप्रेम॥ ६७॥

सवैया इकतीसा—आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसो आश्रव महातम अखंड अंडवत है। ताको विसतार गिलिबे कों परगट भयो, ब्रह्मंड को विकासी ब्रहमंडवत है॥ जामें सवरूप जो सवमें सबरूप सोपें सबनि सों अलिप्त अकाश खंडवत है। सोहै ज्ञान भानु शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको हमारे दंडवतहै॥ ६८॥

सवैया तेइसा--शुद्ध सुछेद अभेद अबाधित, भेद विज्ञान सु तीछन आरा। अंतर भेद सुभाउ विभाव करे जड चेतनरूप दुफारा॥ सो जिन्हके उरमें उपज्यो न रुचे तिन्ह को परसंग सहारा। आतमको अनुभौ करि ते हरखे परखे परमातम धारा॥ ६९॥

सवैया तेइसा--जो कबहूँ यह जीव पदारथ, औसरपाइ मिथ्यात मिटावे। सम्यक धार प्रवाह वहे गुन ज्ञान उदे मुख ऊरध धावै॥ तो अभिअंतर दर्वित भावित कर्म किलेश प्रवेश न पावै। आतम साधि अध्यातम को पथ पूरण व्है परब्रह्म कहावै॥ ७०॥

सवैया तेईसा--भेद मिथ्यात सु वेद महारस भेद विज्ञान कला जिन पाई। जो अपनी महिमा अवधारत, त्यागकरे उरसों ज पराई॥ उद्धतरीति वसे जिनके घट होतु निरंतर ज्योंति सदाई। ते मतिमान सुवर्ण समान लगे तिनकों न शुभाशुभ काई॥ ७१॥

अडिल्ल छंद--भेदज्ञान संवरनिदान निरदोष है। संवरसों निरजरा अनुक्रम मोष है॥ भेद ज्ञान शिवमूल जगतमहि मानिये। यदपि हेय है तदपि उपादय जानिये॥ ७२॥

दोहा--भेदज्ञान तबलों भलो, जबलों मुक्ति न होय।
परमज्योतिपरगटजहां, तहांविकल्प न कोय॥ ७३॥

चौपाई--भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो। सो चेतन शिवरूप कहायो॥ भेदज्ञान जिनके घट नाहीं। ते जड जीव बँधे घटमांही॥ ७४॥

दोहा--भेद ज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर।

धोबी अंतर आत्मा, धोवै निज गुन चीर ॥ ७५ ॥

सवैया इकतीसा–जैसे रजसोधा रज सोधके दरब काढ़े, पावक कनक काढ़ी दाहत उपलकों। पंकके गरभमे ज्यों मारिये कतक फल, नीर करे उज्वल नितारि मारे मलकों ॥ दधिकों मथैया मथि काढ़े जैसे माखनकों, राजहंस जैसे दूध पीवे त्यागि जलकों। तैसे ज्ञानवंत भेदज्ञानकी सकति साधि, वेदे निज संपति उछेद परदल कों ॥ ७६ ॥

छप्पयछंद–प्रगट भेद विज्ञान, आपगुण परगुणजानै। पर परिनत परि त्यागि। शुद्ध अनुभव थित ठानै, करि अनुभव अभ्यास ॥ सहज संवर परगासै, आश्रव द्वार निरोध। कर्म घन तिमर विनासै, छय करि विभाव समभाव भजि। निरविकल्पनिज पद गहै, निर्मल विशुद्ध सासुत सुथिर। परम अतिंद्रिय सुख लहैं ॥ ७७ ॥

इति श्री नाटक समयसारका संवर द्वार छठा संपूर्ण.

सातवां अध्याय निर्जरा द्वार।

दोहा–वरनी संवरकी दसा, जथा जुगति परमान।
मुक्ति वितरनी निर्जरा, सुनहु भविक धरिज्ञान ॥ ७८ ॥

चौपाई–जो संवर पद पाइ अनंदे। जो पूरव कृत कर्म निकंदे ॥ जो अफंद व्है वहुरि न फंदे । सो निरजरा बनारसि वंदे ॥ ७९ ॥

दोहा–महिमा सम्यक् ज्ञानकी, अरु विरागवल जोइ।
क्रिया करत फल भुंजते। कारमबंध नहि होइ ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा–जैसे भूप कौतुक सरूप करै नीच कर्म,

कौतुकी कहावे तासों कौन कहै रंक है । जैसे बिभचारिनी बिचारे विभचार वाको, जारहीसों प्रेम भर तासों चित्त वंक है॥ जैसे धाइ बालक चुंघाइ करै लालि पालि, जानै तांहि औंर को जदपि वाके अंक हैं । तैसे ज्ञानवंत नानाभांति करतूति ठाने, किरियाकों भिन्न माने यातें निकलंक है॥ ८१॥

पुनः—जैसे निशिबासर कमल रहे पंकहिमें, पंकज कहावे पैन याके ढिग पंक है। जैसे मंत्रवादी विषधरसों गहावे गात, मंत्रकी सकति वाके विना विषमंक है॥ जैसे जीभ गहे चिकनाइ रहे रूख अंग, पानी में कनक जैसे कांइसों अटंक है। तैसे ज्ञान वंत नानाभांति करतूति ठाने, किरियाकों भिन्न मानै याते निकलंक है ॥ ८२ ॥

सोरठा—पूर्व उदय संबंध, विषय भोगवे समकिती।
करे न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ८३ ॥

सवैया तेईसा—सम्यकवंत सदा उर अंतर, ज्ञान बिराग उभे गुन धारे । जासु प्रभाव लखे निज लक्षन, जीव अजीव दशा निरवारे। आतम को अनुभौ करि व्है थिर॥ आपु तरे अरु औरनि तारे, साधि सुदर्व लहे शिव सर्म सुकर्म उपाधि व्यथा वमिझारे ॥ ८४ ॥

सवैया तेईसा—जो नर सम्यकवंत कहावत, सम्यक ज्ञान कला नहि जागी । आतमअंग अबंध विचारत, धारत संग कहे हम त्यागी ॥ भेष धरे मुनिराज पटंतर, मोह महानल अंतर दागी । सून्य हिये करतूति करै पर सो सठ जीवन होइ विरागी ॥ ८५ ॥

सवैया तेईसा—ग्रंथ रचे चरचे शुभ पंथ लखे जग में

व्यवहार सुपत्ता। साधि सँतोष अराधि निरंजन, देइ सुसीख न लेइ अदत्ता॥ नंग धरंग फिरै तजिसंग छके सरवंग सुधारस मत्ता। ए करतूति करै सठपै समुझै न अनातम आतम सत्ता॥ ८६॥ ध्यान धरै करि इंद्रिय निग्रह, विग्रहसों न गिनै निजनत्ता। त्यागि बिभूति विभूति मिटै तनजोग गहै भव भोग बिरत्ता॥ मै. रहै लहि मंद कषाय सहै वधबंधन होइ न तत्ता। ए करतूति करै सठपै समुझै न अनातम आतम सत्ता॥ ८७॥

चौपाई—जो बिनुज्ञान क्रिया अवगाहै। जोबिनु क्रिया मोख पदचाहै॥ जो बिनु मोख कहै मैं सुखिया। सो अजान मूढनि में मुखिया॥ ८८॥

सवैया इकतीसा—जगवासी जीवनिसों गुरु उपदेश कहै, तुम्हे इहांसोवतअनंतकालबीतेहैं। जागो व्हैसुचेत चित्तसमता समेत सुनो,केवल वचन जामें अक्षरसजीतेहैं। आऊ मेरे निकट बताउंमें तुह्मारे गुन, परम सुरस भरे करमसों रीते हैं॥ ऐसे बैन कहै गुरु तउ ते न धरैउर, मित्रकेसे पुत्र किधों चित्रकेसे चीते हैं॥ ८९॥

दोहा—एते पर बहुरों सुगुरु, बोलै वचन रसाल।
सैन दशा जाग्रत दशा, कहै दुहूंकी चाल॥ ९०॥

सवैया इकतीसा—काया चित्र सारी में करम परजंक भारी, मायाकी सँवारीसेज चादर कलपना। सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिए,मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना॥ उदै बलजोर यहै श्वासको सबद घोर, विषै सुख कारजकी दौर यहै सुपना। ऐसी मूढदसामें मगन रहै तिहूंकाल, धावै भ्रम जाल में न पावै रूप अपना॥ ९१॥

सवैया इकतीसा—चित्र सारी न्यारी परजंक न्यारो सेज न्यारी, चादर भी न्यारी इहां झूठी मेरी थपना। अतीत अवस्था सैन निद्रा वही कोउ पैन विद्यमान् पलक न यामें अब छपना ॥ श्वास औ सुपनदोउ निद्राकी अलंग बूझे, सूझे सब अंग लखि आतम दरपना । त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागी, भाले दृष्टि खोलि के संभाले रूप अपना ॥ ९२ ॥

दोहा—इहि विधिजे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव ।
जे सोवहि संसार में, ते जगवासी जीव ॥९३॥

सवैया इकतीसा—जब जीव सोवै तबसमुझे सुपन सत्य, वहि झूठलागै जबजागै नींद खोइके । जागै कहै यह मेरा तन यहमेरी सोंज ताहू झूठमानत मरणथिति जोइके। जाने निज मरम मरन तबसूझे झूठ, बूझे जब और अवतार रूप होइके । वाहु अवतारकी दशामें फिरि यहे पेच, याहि भांति झूठो जग देख्यो हम ढोइके ॥ ९४ ॥

सवैया इकतीसा—पंडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि दुंदज अवस्थाकी अनेकता हरतु है । मतिश्रुत अवधि इत्यादि विकलप मेटी, निरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है ॥ इंद्रियजनित सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमको रूप व्है करम निर्जरतु है । सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि आतम आराधि परमातम करतु है ॥ ९५ ॥

सवैया इकतीसा—जाके उर अंतर निरंतर अनंत दर्वे, भाव भासि रहेपें सुभाउ न टरतु है । निर्मलसों निर्मल सुजीवन प्रगट जाके, घटमें अघटरस कौतुक करतु है ॥ जानै

मति श्रुत औधि मनपर्यै केवल सु, पंचधा तरंगनि उमंग उछरतुहै । सोहै ज्ञानउदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमें अनेकता धरतु है ॥ ९६ ॥

सवैया इकतीसा—केई क्रूर कष्ट सहै तपसों शरीर दहै धूम्रपान करै अधोमुख व्हैके झूले है । केई महाव्रत गहै क्रियामें मगन रहै, वहै मुनि भारमें पयार केसे पूले है ॥ इत्यादिक जीवनकों सर्वथा मुगति नांहि, फिरे जगमांहि ज्यों बयारके बघूले है । जिनके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरबान, करमके करतार भरम में भूले हैं ॥ ९७ ॥

दोहा—लीन भयो विवहारमें, उकति न उपजै कोइ ।
दीन भयो प्रभुपद जपै, मुकति कहांसों होइ ॥ ९८ ॥
प्रभु समरो पूजो पढ़ो, करों विविध बिवहार ।
मोक्ष सरूपी आतमा, ज्ञानगम्य निरधार ॥ ९९ ॥

सवैया तेईसा—काज बिना न करैजिय उद्यम लाज बिना रनमांहि न झूझै । डील बिना न सधै परमारथ, सील बिना सतसों न अरूझै ॥ नेम बिना न लहे निहचे पद प्रेम विना रस रीति न बूझै । ध्यान विना न थमे मनकीगति, ज्ञान बिना शिवपंथ न सूझै ॥ २०० ॥

सवैया तेईसा—ज्ञान उदै जिनके घट अन्तर, ज्योतिजगी मति होति न मैली । बाहिज दृष्टिमिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यान कलाबिधि फैली ॥ जे जड़ चेतन भिन्नलखै सु विवेक लिये परखै गुनथैली । ते जगमें परमारथ जानि गहै रुचि मानि अध्यातम सैली ॥ १ ॥

दोहा—बहुबिधि क्रियाकलेससों, शिवपद लहै न कोइ ।

ज्ञान कला परकाशसों, सहज मोक्षपद होइ ॥ २ ॥
ज्ञानकला घट घट बसे, योग युगतिके पार ।
निज निज कला उदोत करि, मुक्तहोइ संसार ॥ ३ ॥

कुंडलियाछन्द—अनुभव चिंतामनिरतन, जाके हिय परगास । सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुर्गति वास ॥ दहै चतुर्गतिवास, आसधरि क्रिया न मंडै । नूतन बंध निरोध, पूर्व कृत कर्म बिहंडै ॥ ताके न गनु विकार, न गनु वहु भार न गनु भौ । जाके हिरदे मांहि, रतन चिंतामनि अनुभौ ॥ ४ ॥

सवैया इकतीसा—जिनके हियेमें सत्य सूरज उदोत भयो, फेलि मति किरन मिथ्यात तम नष्टहै । जिनकी सुदृष्टिमें न परचै विषमतासों समतासों प्रीति ममतासों लष्ट पुष्टहै ॥ जिन्हके कटाक्षमें सहज मोक्षपथ सधै, साधन निरोध जाके तनको न कष्टहै । तिन्हको करमकी किलोल यहैहै समाधि डोले यह जोगासन बोले यह मष्ट है ॥ ५ ॥

सवैया इकतीसा—आतम सुभाउ परभाउकी न सुद्धि ताको, जाको मनमगन परिग्रहमें रह्यो है । ऐसो अविवेक को निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहांलों समुच्चैरूप कह्यो है ॥ अब निज परे भ्रम दूरि करिबेको काजु बहुरो सुगुरु उपदेशको उमह्यो है । परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग कहिवेको उद्यम उदीरि लहलह्यो है ॥ ६ ॥

दोहा—त्याग जोग परवस्तुसब, यह सामान्य बिचार ।
विविधवस्तु नाना विरति, यह विशेषविस्तार ॥ ७ ॥

चौपाई—पूरब कर्म उदै रस भुंजे । ज्ञान मगन ममता

न प्रयुंजे ॥ उर में उदासीनता लहिये । यों बुध परिग्रह वंत न कहिये ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा—जे जे मनवंछित विलास भोग जगत् में, तेते विनासिक सब राखे न रहत हैं, । और जे जे भोग अभिलास चित्त परिणाम, तेते बिनासीक धर्मरूप है बहत हैं ॥ एकता न दुहों मांहि ताते वांछा फुरेनाही, ऐसे भ्रम कारजको मूरख वहत हैं । संनत रहे सचेत परसो न करे हेत याते ज्ञानवन्तको अवंछक कहत हैं ॥ ९ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे फिटकडी लोद्र हरडेकी पुटबिना स्वेत वस्त्र डारिये मजीठरङ्ग नीरमें । भीग्योरहै चिरकाल सर्वथा न होइलाल, भेदे नहीं अंतर सपेतीरहे चीर में । तैसे समकितवन्त राग दोष मोह बिनु, रहे निशिबासर परिग्रह की भीरमें । पूरब करमहरे नूतन न बंध करे जाचे न जगत् सुख राचे न शरीर में ॥ १० ॥

सवैया इकतीसा—जैसे काहुदेसको बसैया बलवन्त नर, जंगलमें जाइ मधुछत्ताकों गहतु है । वाकों लपटाय चहुं-ओर मधुमक्षिकापै, कंवलीकीओट सोअडंकित रहतु है ॥ तैसे समकिती शिव सत्ताको सरूप साधे, उदेकी उपाधिकों स-माधिसी कहतु है । पहिरे सहजको सनाह मनमें उछाह, ठाने सुखराह उदवेग न लहतु है ॥ ११ ॥

दोहा—ज्ञानी ज्ञान मगन रहै, रागादिक मल खोइ ।
चित उदास करनीकरे, करम बंध नाहि होइ ॥ १२ ॥
मोह महातम मलहरे, धरे सुमति परगास ।
मुगति पंथ परगटकरे दीपक ज्ञान विलास ॥ १३ ॥

सवैया इकतीसा—जामें धूमको न लेस वातको न परवेस, करम पतंगनिको नाशकरे पलमें । दसाको न भोग न सनेहको संयोग जामें, मोह अंधकारको विजोग जाके थलमें ॥ जामें नतताइ नहीं रागरंक ताइरंच, लह लहे समता समाधिजोग जलमें । ऐसी ज्ञानदीपकी सिखा जगी अभंग रूप, निराधार फुरीपेदुरी है पुदगलमें ॥ १४ ॥

सवैया इकतीसा—जैसोजो दरबतामें तैसोही सुभाउसधे, कोउ दर्ब काहुको सुभाउ न गहतु है । जैसे संख उज्वल विविध वर्ण माटीभखे, माटीसो न दीसे नितउज्वल रहतुहे ॥ तैसे ज्ञानवंत नाना भोग परिग्रह जोग, करतविलास न अज्ञानता लहतुहै । ज्ञानकला दूनी होइ दुन्द दसा सूनीहोइ ऊनी होई भौथिति बनारसी कहतुहे ॥ १५ ॥

सवैया इकतीसा—जोलोंज्ञानको उदोत तोलों नही बंधहोतु, वरते मिथ्याततव नानाबंध होहिहे । ऐसोभेद सुनिके लग्योतूं विषै भोगनिसों, जोगनिसों उद्यमकी रीतितें बिछोहि है ॥ सुनो भैया संतत कहे में समकितवंत, यहुतो एकंत परमेसरकी दोहिहे । विषसों विमुख होइ अनुभो दशा आरोहि, मोषसुख ढोहि ऐसी तोहि मति सोहि है ॥ १६ ॥

चौपाई—ज्ञानकला जिनके घट जागी । ते जगमांहि सहज वैरागी ॥ ज्ञानी मगन विषै सुखमांही । यहु विपरीत संभवे नांही ॥ १७ ॥

दोहा—ज्ञान सहित वैराग्य वल, शिव साधे समकाल ।
ज्यों लोचन न्यारे रहें, निरखै दोऊ नाल ॥ १८ ॥

चौपाई—मूढ़ कर्मको कर्त्ता होवे । फलअभिलाष धरे फल

जोवै ॥ ज्ञानी क्रिया करै फल सूनी । लगै न लेप निर्जरा दूनी॥१९

दोहा—बँधे कर्मसों मूढ़ज्यों, पाट कीट तन पेम ।
खुलै कर्मसों समकिती, गोरख धंधा जेम ॥ २० ॥

सवैया तेईसा—जे निज पूरवकर्म उदै सुख भुंजतभोग उदास रहैंगे । जे दुख में न विलाप करैं निरबैर हिये तन ताप सहेंगे ॥ है जिनके दृढ आतम ज्ञान क्रिया करिके फलकों न चहेंगे । ते सुबिचक्षन ज्ञायकहैं तिनकों करता हमतो न कहेंगे ॥ २१ ॥

सवैया इकतीसा—जिनकी सुदृष्टिमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिनको आचार सुविचार सुभ ध्यानहै । स्वारथको त्यागी जे लहैंगे परमारथकों, जिनके बनिजमें नफा न है न ज्यानहै ॥ जिनकी समुझमें शरीर ऐसो मानीयतु, धानकोसो छीलक कृपानकोसो म्यानहै । पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके तेई साधु तिनहीको जथारथ ज्ञान है ॥ २२ ॥

सवैया इकतीसा—जलकासो भ्राता दुःखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहतुहै । सुरग निवासी भूमि वासी औ पतालवासी, सबहीको तन मन कंपत रहतु हैं ॥ उरको उजारो न्यारो देखिये सपत भैसों, डोलतु निशंकभयो आनंद लहतु है । सहज सुबीर जाको सासुतो शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आरज आचारज कहतुहैं ॥ २३ ॥

दोहा—इह भव भय परलोक भय, मरन वेदना जात ।
अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥ २४ ॥

सवैया इकतीसा—दसधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति गमन परलोक भय मानिये । प्राननिको हरन मरन भै

कहावै सोई, रोगादिक कष्ट यह वेदना बखानिये ॥ रच्छक ह-मारो कोउ नांही अनरच्छा भय, चौरभै विचार अनुगुत मन आनिये। अन चिंत्यो अब हि अचानक कहांधों होइ, ऐसो भ-य अकस्मात जगतमें जानिये ॥ २५ ॥

छप्पय छंद—नख शिख मित परवान, ज्ञान अवगाह निर-क्खत। आतमअंग अभंग, संग परधनइम अक्खत॥ छिनभंगुर संसार, विभव परिवार भारजसु। जहां उतपाति तहां प्रलय, जासु संयोग बिरह तसु॥ परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इह भव भय उपजै न चित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरू प निरखंत नित ॥ २६ ॥

छप्पय छंद—ज्ञानचक्र ममलोक, जासु अवलोक मोख सुख। इतरलोक मम नांहि, नांहि जिसमांहि दोष दुख॥ पुन्न सुगति दातार, पाप दुरगति पद दायक। दोखंडित खानिमें, अखंडित है शिवनायक॥ इह विधि विचार परलोक भय, नहि व्यापक वरते सुखित। ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप नि रखंतनित ॥ २७ ॥

छप्पय छंद—फरस जीभ नाशिका, नैन अरु श्रवन अक्ष इति। मन वच तन बल तीन, सास उस्सास आउ थित॥ ए द स प्राणविनाश, ताहि जग मरण कहीजे। ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहु काल न छीजे॥ यह चिंत करत नहि मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित। ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञान रूप निरखंत नित ॥ २८ ॥

छप्पय छंद—वेदनवारो जीव, जांहि वेदंत सोउ जिय। यह वेदना अभंग, सुतो मम अंग नांहि व्यय॥ करम वेदना

द्विविध, एक सुखमय दुतीय दुख । दोऊ मोह विकार, पुद्ग-लाकार बहिरमुख ॥ जब यह विवेक मनमाहिं धरत, तब न वेदना भय विदित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ २९ ॥

छप्पय छंद—जो स्ववस्तु सत्ता सरूप, जगमहि त्रिकाल गत । तासु विनास न होइ, सहज निहचै प्रमाण मत ॥ सो मम आतम दरब, सरवथा नहि सहाय धर । तिहिं कारन रक्षक न होइ, भक्षक न कोइपर ॥ जब यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा भय नसित । ज्ञानीनिसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ३० ॥

छप्पयछंद—परमरूप परतक्ष, जासु लक्षन चिन मण्डित । पर प्रवेश तहां नांहि, माहिं महि अगम अखंडित ॥ सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अकूट धन । तांहिं चोर किमगहै, ठौर नाहिं लहै और जन ॥ चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब अगुप्तभय उपसमित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञान रूप निरखंत नित ॥ ३१ ॥

छप्पय छंद—शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सु समृद्ध सिद्ध सम । अलख अनादि अनंत अतुल अविचल सरूप मम ॥ चिदविलास परगास, बीत विकलप सुख थानक । जहां दुविधा नहिं कोइ, होइ तहाँ कछु न अचानक ॥ जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात भय नहि उदित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ३२ ॥

छप्पयछंद—जो परगुन त्यागंत, शुद्ध निजगुन गहंतधुव । विमल ज्ञान अंकूर, जासु घट महि प्रकास हुव ॥ जो पूरब

कृतकर्म, निर्जराधार बहावत। जो नव बंध निरोध, मोष मारग मुख धावत॥ निःसंकतादि जस अष्टगुन, अष्टकर्म अरि संहरत। सो पुरुष बिचक्षण तासु पद, बनारसी बन्दन करत॥ ३३॥

सोरठा—प्रथम निसंसै जानि, दुतिय अवंछितपरिनमन।
तृतिय अंगअगिलानि, निर्मलदृष्टिचतुर्थगुन॥ ३४॥
पंचअकथपरदोष, थिरीकरन छट्ठमसहज।
सत्तम वच्छलपोष, अट्ठम अङ्ग प्रभावना॥ ३५॥

सवैया इकतीसा—धर्ममें न संसै शुभकर्म फलकी न इच्छा अशुभ कों देखि न गिलानि आनै चित्त में। सांचि दृष्टिराखै काहू प्रानीको न दोष भाखै, चंचलता भानि थिति बोधठानै चित्त में॥ प्यारे निजरूपसों उछाहके तरंग उठे, एइ आठो अंग जब जागे समकितमें। तांहि समकितकों धरेसो समकित वंत, वह मोखपोत्र उन आवै फिर इत में॥ ३६॥

सवैया इकतीसा—पूर्व बंध नासे सोतो संगित कला प्रकाशे, नव बंध रुंधी ताल तोरत उछारिके। निसंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरी, समता अलाप चारि करे सुख भरिके॥ निरजरा नादगाजे ध्यान मिरदिंग बाजे, छक्यो महानंद में समाधि रीझि करिके। सत्तारंग भूमि में मुकत भयो तिहूंकाल, नाचे शुद्ध दृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके॥ ३७॥

इतिश्रीसमयसारनाटकविपेनिर्जराद्वारसप्तमसंपूर्ण।
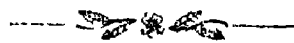
८ अध्याय बंधद्वार।

दोहा—कही निर्जरा की कथा, शिवपथ साधनहार।
अब कछु बंध प्रबंधको, कहूं अल्प विस्तार ॥ ३८॥

सवैया इकतीसा—मोह मद पाई जिन संसारी विकल कीने, याहिते अजानु बाहुबिरद वहतु है। ऐसो बंधवीर विकराल महाजाल सम, ज्ञानमंद करे चंदराहु ज्यों गहतु है॥ ताको बल भंजिवेकों घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उद्देस महतु है। सो है समकित सूर आनंद अंकूर ताही, निरखि बनारसी नमो नमो कहतु है ॥ ३९ ॥

सवैया इकतीसा—जहां परमातम कलाको परगास तहां, धरम धरामें सत्य सूरजको धूपहै। जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां, मोहके बिलासमें महाअंधेर कूप है॥ फेळी फिरे छटासी घटासी घटघनबीच, चेतनकी चेतना दुहोंधागुपचूप है। बुद्धिसों न गहीजाय बेनसों न कहीजाय पानीकी तरंग जैसे पानीमें गुडूप है ॥ ४० ॥

सवैया इकतीसा—कर्मजाल वर्गनासों जगमें न बंधे जीव, बंधे न कदापिमन वच काय जोगसों। चेतन अचेतन की हिंसासों न बंधेजीव, बंधे न अलख पंचविषे विखरोगसों ॥ कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसौं अबंध जिन हिंसासौं अबंध साधु ज्ञाता विषै भोगसों। इत्यादिक बस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, बंधे एक रागादि अशुद्ध उपजोगसों ॥ ४१ ॥

सवैया इकतीसा—कर्मजाल वर्गनाको वास लोकाकाश माहिं, मनवच कायको निवास गति आउमें। चेतन अ-

चेतनकी हिंसावसै पुद्गलमें, बिषेभोग वरते उदेके उरजाउ में ॥ रागादिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकी यहे उपादान हेतु बंधके बढाउमें । याहिते बिचक्षन अबंध कह्यो तिहूँ काल, रागदोष मोहनादि सम्यक् सुभाउ में ॥ ४२ ॥

सवैया इकतीसा—कर्मजाल जोग हिंसा भोगसों न बंधे पै तथापि ज्ञाता उद्यमीवखान्यो जिन बैनमें । ज्ञानदृष्टि देतु विषे भोगनिसों हेतु दोउ, क्रियाएकखेत यों तो बने नांहि जैनमें ॥ उदैबल उद्यम गहे पै फलकों न चहे निरदे दसा न होई हिरदेके नैनमें । आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यात मांहि, जहां न संभरै जीव मोहनींद सैनमें ॥ ४३ ॥

दोहा—जब जाकों जैसे उदै, तबसोहै तिहि थान ।
सकति मरोरै जीवकी, उदै महा बलवान ॥ ४४ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे गजराज पर्‍यो कर्दमके कुंडबीच उद्यम अहूटै नपै छूटै दुःख द्वंदसों । जैसे लोह कंटक की कोरसों उरभयो मीन, चेतन असाता लहै सातालहै संदसों ॥ जैसे महाताप सिरवाहिसों गरास्यो नर, तकै निजकाज उठी सकै न सुछंदसों । तैसे ज्ञानवंत सब जानै न बसाई कछु, बंध्यो फिरैपूरव करमफल फंदसों॥४५॥

चौपाई—जे जिय मोहनींदमें सोवै, ते आलसी निरुद्यमि होवै ॥ दृष्टिखोलि जगे प्रवीना । तिन्हि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ४६ ॥

सवैया इकतीसा—काच बांधे सिरसों सुमनी बांधैं पायनिसों, जानै न गंवारकैसी मनी कैसो काच है । योंहीमूढ़ जूठमें

मगन जूठहिकों दौरे, जूठ बात माने पै न जाने कहा साच है ॥ मनीको परखि जाने जोहरी जगत् मांहि, साचकी समुझी ज्ञान लोचनकी जाच है, जहांको जु वासीसो तो तहांको मरम जाने, जाको जैसो स्वांग ताको तैसेरूप नाच है ॥ ४७ ॥

दोहा—बंध बंधावे अंध व्है, ते आलसी अजान ।
मुक्ति हेतु करनी करैं, ते नर उद्यमवान ॥ ४८ ॥

सवैया इकतीसा—जवलगु जीव शुद्ध वस्तुको विचारै ध्यावै तबलगु भोगसों उदासी सरवंग है । भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नाहिं, भोग अभिलाषकी दशा मिथ्यात अंग है ॥ ताते विषै भोगमें मगन सो मिथ्याति जीव, भोग सों उदासि सो समकिति अभंग है । ऐसी जानि भोगसों उदासि व्है मुगति साधै, यहै मन चंग तो कठोत मांहि गंग है ॥४९॥

दोहा—धरम अरथ अरु काम शिव, पुरुषारथ चतुरंग ।
कुधी कलपना गहि रहै, सुधी गहै सरबंग ॥५०॥

सवैया इकतीसा—कुलको आचार ताहि मूरख धरम कहै पंडित धरम कहै वस्तुके सुभाउको । खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथकहै, ज्ञानीकहै अरथ दरब दरसाउको ॥ दंपतिको भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहै, सुधी काम कहै अभिलाष चित आउको, इन्द्रलोक थानको अजानलोक कहै मोक्ष, मतिमान मोक्ष कहै बंधके अभाउको ॥ ५१ ॥

सवैया इकतीसा—धरमको साधन जु वस्तुको सुभाउ साधै, अरथको साधन विलेछ दर्ब षटमें । यहै काम साधना जु संगहै निरास पद, सहज स्वरूप मोख सुद्धता प्रगटमें ॥ अंतर सु-

दृष्टिसों निरंतर विलोके वुध, धम्म अरथ काम मोक्ष निजघ-टमें । साधन आराधनकी सोंज रहै जाके संग, भूलो फिरै मूरख मिथ्यातकी अलटमें ॥ ५२ ॥

सवैया इकतीसा—तिहूं लोकमांहि तिहूं काल सब जीवनि कों, पूरब करम उदै आइ रस देतुहैं । कोउ दीरघाउ धरै को उ अलपाउ मरै, कोउ दुखी कोउ सुखी कोउ समचेतहै ॥ या-हीमें जीवायो याही मार्‍यो याहि सुखी कर्‍यो दुखी कर्‍यो एसी मूढ़ आपु मानी लेतु है । याही अहं बुद्धिसों न विलसै भरम मूल यहै मिथ्या धरम करम बंध हेतुहै ॥ ५३ ॥

सवैया इकतीसा—जहांलों जगतके निवासी जीव जगतमें, सबै असहाय कोऊ काहुको न धनीहै । जैसी२ पूरब करमसत्ता बांधिजिन, तैसी तैसी उदै में अवस्था आइ बनी है ॥ एते परि जो कोउ कहै कि मैं जीवावोंमारों इत्यादि अनेक विकलप वात घनी है । सोतो अहं बुद्धिसों विकल भयो तिहूंकाल, डोलै निज आतम सकति तिन हनी है ॥ ५४ ॥

सवैया इकतीसा—उत्तम पुरुषकी दशा ज्यों किसमिस दा-ख, बाहिज अभिंतर विरागी मृदु अंग है । मध्यम पुरुष ना-रियरकेसी भांति लिये, बाहिज कठिन हिय कोमल तरंग है ॥ अधम पुरुष बदरीफल समान जाके बाहिरसों दिसै न-रमाइ दिल संगहै । अधमसों अधम पुरुष पुंगीफल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरबंग है ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—कीच सो कनक जाके नीचसो नरेशपद, मीचसी मिताई गरवाई जाके गारसी । जहरसी जोग जानि कहरसी करामाति, हहरसीहोंस पुद्गल छबि छारसी । आलसो

जग विलास भालसो भुवनवास.काल सो कनंब काज लोक लाज लारसी। सांठ सो सुजस जानै वीठसोवखत मानै, ऐसी जाकी रीति ताहि बंदत बनारसी॥ ५६॥

सवैया इकतीसा—जैसे कोउ सुभट सुभाय ठग मूरखाय, चेरा भयो ठगनीके घेरामें रहतु है। ठगोरी उतरिगई तबतांहि सुधिभई, पऱ्यो परवस नाना संकट सहतु है॥ तैसेही अनादिको मिथ्याति जीव जगतमें, डोलै आठौं जाम विसराम न गहतुहै। ज्ञान कला भासी भयो अंतर उदासी पै तथापि उदे व्याधिसों समाधि न सहतु है॥ ५७॥

सवैया इकतीसा—जैसें रांक पुरुषके भाये कानी कोड़ी धन, उलूवाके भाय जैसे संझाई विहान है। कूकरके भाये ज्यों पिडोर जिरवानी मठा, सूकरके भाय ज्यों पुरीष पकवानहै॥ वायसके भाये जैसे नींवकी निवोरी दाख, वालकके भाये दंत कथाज्यों पुरानहै। हिंसकके भाये जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके भाये सुभ बंध निरवानहै॥ ५८॥

सवैया इकतीसा—कुंजरको देखि जैसे रोष करी भुंसे स्वान, रोष करे निर्धन विलोकि धनवंतको। रैनके जगैयाको विलोकि चोर रोष करे, मिथ्यमति रोषकरै सुनत सिद्धंतको॥ हंसको विलोकि जैसे काग मनि रोप करे, अभिमानी रोष करै देखत महंतको। सुकविको देखि ज्यों कुकवि मन रोष करे, त्योंहीं दुरजन रोष करे देखि संतको॥ ५९॥

सवैया इकतीसा—सरलको सठ कहै बकताको धीठ कहै, बिनो करै तासों कहै धनको अधीनहै। छमीको निबल कहै

दमीकों अदत्ती कहै, मधुर वचन बोले तासोंकहै दीनहै ॥ धरमीकों दंभी निसपृहीकों गुमानी कहै, तिशना घटावै तासों कहै भागहीन है । जहां साधु गुण देखे तिन्हकों लगावे दोष, ऐसो कछु दुर्जनको हिरदो मलीनहे ॥ ६० ॥

चौपाई—में करना में कीन्ही कैसी । अब यों करों कहौ जो ऐसी ॥ ए विपरीत भाव है जामें । सो बरतै मिथ्यात दसा में ॥ ६१ ॥

दोहा—अहंबुद्धि मिथ्यादसा, धरै सु मिथ्यावन्त ।
विकल भयो संसार में, करे विलाप अनन्त ॥ ६२ ॥

सवैया इकतीसा—रविके उदोत अस्त होत दिन २ प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यों जीवन घटतु है । कालके ग्रसत छिन छिन होत छीन तन, और के चलत मानो काठसो कटतु है ॥ एते परि मूरख न खोजे परमारथकों, स्वारथ के हेतु भ्रम भारत ठटतुहे । लग्यो फिरै लोगनिसों पग्यो परिजोगनिसों, विषे रसभोगनिसों नेकु न हटतु है ॥ ६३ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे मृग मत्त वृषादित्य की तपति मांहि, तृषावन्त मृषा जल कारण अटतु हैं । तैसे भववासी मायाही सों हित मानि मानि, ठानि ठानि भ्रम भूमि नाटक नटतुहै ॥ आगेकों ढुकत धायपाछे बछरा चराय, जैसे दृगहीन नर जेवरी वटतु है । तैसे मूढ़ चेतन सुकृत करतूति करै, रोवत हसतफल खोवत खटतु है ॥ ६४ ॥

सवैया इकतीसा—लिये दृढ़ पेच फिरै लोटन कबूतर सो उलटो अनादि को न कहो सु लटतु है । जाको फल दुःख ताही साता सो कहत सुख, सहित लपेटी असी धारासी

घटतु है ॥ ऐसे मूढ़ जन निज संपती न लखे क्योंही, मेरी मेरी मेरी निशि बासर रटतु है । याही ममता सों परमारथ बिनसी जाइ, कांजी को फरस पाई दूध ज्यों फटतु है ॥ ६५ ॥

सवैया इकतीसा—रूपकी न झांक हिये करम को डांक पिये, ज्ञान दवि रह्यो मिरगांक जैसे घन में । लोचन की ढांक सों न माने सदगुरु हांक, डोलै पराधीन मूढ़ रांक तिहूं पन में ॥ टांक इक मांस की डलीसी तामें तीन फांक, तीनि को सो अंक लिखि राख्यों काहु तन में । तासों कहै नांक ताके राखिबेको करै कांक, लांकसो खरग बांधि बांक धरै मनमें ॥ ६६ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे कोउ कूकर क्षुधित सूके हाडचावे हाडनिकी कोर चिहूं ओर चुभे मुख में । गाल तालू रस मांस मूढ़निको मांस फाटे, चाटे निज रुधिर मगन स्वाद मुख में ॥ तैसे मूढ़ विसयी पुरुष रति रीत ठाने तामें चित साने हित माने खेद दुःख में । देखे परतक्ष बल हानी मलमूतखानी, गहे न गिलानी पगी रहे रागरुख में ॥ ६७ ॥

अडिल्ल छंद—सदा करमसों भिन्न सहज चेतन कह्यो । मोह विकलता मानि मिथ्याती ह्वै रह्यो । करै विकल्प अनन्त, अहंमति धारिके । सो मुनि जो थिर होइ ममत्त निवारि के ॥ ६८ ॥

सवैया इकतीसा—असंख्यात लोक परवान जो मिथ्यात भाव, तेई व्यवहार भाव केवली उकत है । जिन्ह के मिथ्यात गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन विवहार

सों मुकतहै ॥ निर विकलप निरुपाधि आतमा समाधि, साधि जे सगुन मोक्षपंथकों ढुकतहै । तेई जीव परमदशा में थिररूप व्हैके, धरममें ढुके न करमसों रुकत है ॥६९॥

कवित्तछंद—जे जे मोह करमकी परिनति, बंध निदान कही तुम सव्व । संतत भिन्न शुद्ध चेतन सों, तिन्हि को मूल हेतु कहु अव्व ॥ कै यह सहज जीव को कौतुक, कै निमित्तहै पुद्गल दव्व । सीस नवाइ शिष्य इमपूछत, कहै सुगुरु उत्तर सनु भव्व ॥७०॥

सवैया इकतीसा—जैसे नानावरन पुरी बनाइदीजे हेठि उज्जल विमल मनु सूरज करांति है । उज्जलता भासे जब वस्तुको विचार कीजे, पुरीकी झलकसों वरन भांति भांति है ॥ तैसे जीव दरवको पुग्गल निमित्त रूप, ताकी ममतासो मोह मदिराकी मांति है । भेद ज्ञान दृष्टिसों सुभाव साधि लीजे तहां, साचि शुद्ध चेतना अवाची सुख शांति है ॥ ७१ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे महिमंडलमें नदीको प्रवाह एक, ताहीमें अनेक भांति नीरकी ढरनि है । पाथरको जोर तहां धारकी मरोरि होति, कांकरिकी खानि तहां झांगकी झरनि है ॥ पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग उठै, भूमिकी निचानि तहां भौरकी परनि है । तैसे एक आतमा अनंत रस पुदगल, दुहूकी संयोगमें विभावकी भरनि है॥७२॥

दोहा—चेतन लक्षन आतमा, जडलक्षन तन जाल ।
तनकी ममता त्यागिके, लीजे चेतन चाल ॥७३॥

सवैया तेईसा—जो जगकी करनी सब ठानत, जो जग

जानत जोवत जोई । देह प्रमान पै देहसुँ दूसरो, देह अ-
चेतन चेतन सोई ॥ देह धरप्रभु देहसुँ भिन्न, रहे परछन्न
लखै नहि कोई । लक्षन वेदि बिचच्छन बूझत, अक्षनिसों
परतक्ष न होई ॥ ७४ ॥

सवैया तेईसा—देह अचेतन प्रेत दरी रज, रेतभरी मल
खेतकी क्यारी । व्याधि की पोट अराधिकी ओट उपाधि
की जोट समाधिसों न्यारी ॥ रेजिय देह करै सुख हानि
इते परि तोहि तु लागत प्यारी । देहतु तोहि तजेगि नि-
दान पि, तूंहित जे क्युँ न देहकि यारी ॥ ७५ ॥

दोहा—सुनु प्रानी सदगुरु कहै, देह खेहकी खानि ।
धरै सहज दुख दोषकों, करै मोच्छकी हानि ॥ ७६ ॥

सवैया इकतीसा—रेतकीसी गढ़ी किधों मढ़ी है मसान के-
सी, अंदर अंधेरीजैसी कंदराहे सैलकी । ऊपरकी चमक दम-
क पट भूखनकी, धोखे लागे भली जैसी कली है कनैलकी ॥
औगुनकी औंडी महा भौंडी मोहकी कनौंडी, मायाकी
मसूरतिहै मूरतिहै मैलकी । ऐसी देह याहिके सनेह याकी
संगतिसों, व्है रही हमारी मति कोलू केसे बैलकी ॥७७॥

सवैया इकतीसा—ठौर ठौर रकतके कुंड केसनिके झूंड,
हाड़निसों भरी जैसे थरी है चुरैलकी । थोरे से धकाके
लगे ऐसे फटजाय मानो, कागदकी पुरी किधों चादरहै चैल
की ॥ सूचै भ्रमा वानि ठानि मूढ़निसों पहिचानि, करै सुख
हानि अरुखानि बदफैलकी । ऐसी देह याहिके सनेह याकी
संगतिसों, व्हैरही हमारी मति कोलू केसे बैलकी ॥ ७८ ॥

सवैया इकतीसा—पाटी बंधे लोचनसों संकुचे दबोचनिसों,

कोचनिकोसोच सोनिवेदे खेदतनको।धाइवोही धंधाअरु कं-
धामाहि लग्योजोत,वारवार आरसहे कायरहे मनको॥ भूख-
सहे प्याससहे दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न गहे न उसा
स लहे छिनको। पराधीन घूमै जैसो कोल्हुको कमेरो वैल,तै
सोइ स्वभाव भैया जगवासी जनको ॥ ७६ ॥

सवैया इकतीसा—जगतमें डोले जगवासी नर रूप धरी,
प्रेतकैसे दीप किधो रेत केसे थुहे है। दीसे पटभूखन आ-
डंवरसों निके फिरे फीके छिनमांझि सांझी अंवर ज्यों सु-
हेहै ॥ मोहके अनल दगे मायाकी मनीसोंपगे,दाभकी अ-
नीसों लगे ऊसकेसे फुहे है, धरमकी वुझि नाही उरझे
भरम माही.नाचि नाचि मरजाहि मरीकेसे चुहेहै ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा—जासों तूं कहत यह संपदा हमारीसो-
तो, साधनि अडारी ऐसे जैसे नाक सिनकी । जासों तूं
कहत हम पुन्य जोग पाई सोतो, नरककी साई हे वडाई
देढ दिनकी ॥ घेरा मांहि पन्योतूं विचारे सुख आखिन्हि
को, माखिनके चूंटत मिठाई जैसे भिनकी । एते परि हो-
हि न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता
एक छिनकी ॥ ८१ ॥

दोहा—यह जगवासी यहजगत,इनसों तोहि न काज।
तेरे घटमें जग वसे, तामें तेरो राज ॥ ८२॥

सवैया इकतीसा—याही नर पिंडमें विराजे त्रिभुवन थि-
ति, याहिमें त्रिविध परिणाम रूप शृष्टि है । याहिमें कर-
मकी उपाधि दुःख दावानल, याहिमें समाधि सुख वारिद
की वृष्टि है ॥ यामें करतार करतूति याहि में विभूति, या

में भोग याही में वियोग यामें घृष्टि है । याहि में विलास सब गर्भित गुपतरूप, ताहिकों प्रगट जाके अंतर सु वृष्टि है ॥ ८३ ॥

सवैया तेईसा—रे रुचिवंत पचारि कहे गुरु, तूं अपनो पद बूझत नांही । खोज हिये निज चेतन लक्षन है निज में निज गूझत नांही ॥ सिद्ध सुछंद सदा अति उज्जल, मायके फंद अरूझत नांहीं । तोर सरूप न दुंदकि दोहिमें तोहिमें है तुहि सूझत नांही ॥ ८४ ॥

सवैया तेईसा—केइ उदासरहे प्रभु कारन, केइ कहीं उठि जाहि कहींके । केइ प्रनाम करें गढि मूरति, केइ पहार चढे चढि छींके ॥ केइ कहे असमान कें ऊपरि, केइ कहे प्रभु हेठि जमीके । मेरो धनी नहि दूरदिशांतर, मोमहि है मुंहि सूझतनीके ॥ ८५ ॥

दोहा—कहे सुगुरु जो समकिती, परमउदासी होइ ।
सुथिर चित्त अनुभौ करै, यहपद परसै सोइ ॥ ८६ ॥

सवैयाइकतीसा—छिनमें प्रवीन छिनहीमें मायासों मलीन, छिनकमें दीन छिनमांहि जैसो शक्रहै । लिये दोर धूप छिन छिनमें अनंतरूप, कोलाहल ठानत मथानकोसो तक्र है ॥ नट कोसो थार किधों हारहे रहटकोसो, नदी कोसो भौंर कि कुंभारकोसो चक्रहे । ऐसो मन भ्रामक सुथिरआजु केसेहोइ, ओरहिको चंचल अनादिहीको बक्रहै ॥ ८७ ॥

सवैया इकतीसा—धायो सदा कालपे न पायो कहूं सांचोसुख, रूपसों विमुख दुख कूपबास बसाहै । धरमको घाती अधरमकोसँघाती महा, कुराफाती जाकी सन्निपाती

कीर्सी दसा है ॥ माया कों झपटि गहै कायासों लपटि रहै, भूल्यो भ्रम भीर में बहीर कोसो ससा है। ऐसो मन चंचल पताका केसो अंचल. सु ज्ञानके जगे सें निरवानपथ धसा है ॥ ८८ ॥

दोहा–जो मन विषय कषायमें, वरते चंचल सोइ ।
जोमनध्यान विचारसों, रुकेसुअविचलहोइ ॥ ८९ ॥
ताते विषय कषायसों, फेरि सुमनकी वानि ।
शुद्धातम अनुभो विषे,कीजे अविचल आनि ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसा–अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज,निराधार निगम निरंजन निरंधहै। नानारूप भेप धरे भेपको न लेसधरे, चेतन प्रदेसधरे चेतनाको षंधहै ॥ मोहधरे मोहीसोविराजे तोमें तोहीसो.न तोहिसो न मोहीसो निरागी निरवंधहै। ऐसो चिदानंद याही घटमें निकट तेरे, ताही तूं विचार मन और सर्व धंधहै ॥ ९१ ॥

सवैया इकतीसा–प्रथम सु दृष्टिसों सरीररूप कीजे भिन्न तामै और सूछम शरीर भिन्न मानियें। अष्ट कर्मभावकी उपाधि सोई किजे भिन्न ताहुमें सुवुद्धिको बिलास भिन्न जानिये ॥ तामें प्रभु चेतन विराजित अखंडरूप, वहे श्रुत ज्ञान के प्रवान ठीक आनिये। वाहिको बिचार करि वाहिमें गमन हुजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि ठानिये ॥ ९२॥

चोपाई–इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने। रागादिक निजरूप न माने ॥ तातें ज्ञानवंत जगमांही। करम बंधको करता नाहीं ॥ ९३ ॥

सवैया इकतीसा–ज्ञानी भेद ज्ञानसों विलेछि पुदगलकर्म,

प्रतिग्रह करना अर्थात् बहुत आदर सहित अपने घरमें प्रवेश कराना (२) ऊंचे स्थान पर बिठाना (३) पानी से पैर धोना (४) उत्तम सामग्री से पूजना (५) नमस्कार करना (६) विनय संयुक्त वचन बोलना [७] कायकर सेवा करना [८] मनमें आदर और भक्तिभाव रखना [९] देनेयोग्य शुद्ध आहार देना ॥ १६७ ॥

ऐहिकफलानपेक्षा क्षांतिर्निष्कपटतानसूयत्वं ॥
अविषादित्वमुदित्वेनिरंहकारित्वमितिहिदातृगुणाः ॥

अर्थ--दातार के ७ गुण हैं दातार इन गुणोंकर संयुक्त होना चाहिये [१] इसलोक सम्बन्धी कुछ चाह न हो [२] क्षमावान हो [३] निष्कपट हो [४] ईर्षा भाव न हो [५] दान देकर दुखी न हो [६] बहुत हर्ष करे (७) इसबात का अहंकार न करे कि हम बहुत दातार हैं ॥ १६८ ॥

रागद्वेषासंयममदद्दुःखभयादिकंनयत्कुरुते ।
द्रव्यंतदेवदेयंसुतपःस्वाध्यायवृद्धिकरं ॥ १६९ ॥

अर्थ--जो वस्तु राग, द्वेष, असंयम, मान, दुःख, भय इत्यादिक पापोंके उपजावने वाली नहीं है और अच्छे तप और स्वाध्यायकोवढाने वालीहै वहही वस्तुदेने योग्यहै१६९

पात्रंत्रिभेदमुक्तंसंयोगोमोक्षकारणगुणानां ।
अविरतसम्यग्दृष्टिःविरताविरतःसकलविरतः।१७०।

अर्थ--मोक्ष के जो कारण हैं उन गुणोंकर जो संयुक्त

हो वह पात्र है उसके तीन भेदहैं (१) अविरत सम्यग्दृष्टि (२) देशव्रती श्रावक (३) महाव्रती साधु ॥१७०॥

हिंसायाःपर्यायोलोभोत्रनिरस्यतेयतोदाने ।
तस्मादतिथिवितरणंहिंसाव्युपरमणमेवेष्टं ॥१७१॥

अर्थ--दानके देनेसे लोभका नाश होता है लोभ हिंसा की पर्यायहै इसकारण दान देनेसे हिंसाका त्यागहोताहै १७१

गृहमागतायगुणिनेमधुकरवृत्यापरानपीडयते ।
वितरतियोनाऽतिथयेसकथंनहिलोभवान्भवति १७२

अर्थ--अतिथि जो गुणोंकर संयुक्त है और जो भ्रमर कीसी वृत्ति कर दातार को पीडा नहीं देता है ऐसे अतिथि को घरपर आये हुवे भी जो दान नहीं देता हैं वह किस तरह लोभी नहींहै अर्थात् अवश्य लोभीहै ॥

भावार्थ--जैसे भौंरा फूलको किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुंचाताहै केवल उसकी बासना लेताहै इसही प्रकार अतिथिभी दातारको किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं देताहै ऐसे अतिथि को घरपर आनेपरभी जो आहार आदिक न देवै वह अवश्य लोभीहैं इसही से सिद्ध होताहै कि दान देने वालेका लोभ दूर होताहै ॥ १७२ ॥

कृतमात्मार्थंमुनयेददातिभक्तमितिभावितस्त्यागः ।
अरतिविषादविमुक्तःशिथिलितलोभोभवत्यहिंसैव ॥

अर्थ--जिस पुरुष के दान देने में अनुराग है और देने से विषाद नहीं होता है ऐसा पुरुष अपने खाने के वास्ते

जो भोजन बनाया था उसको अतिथि को देकर त्याग भाव अंगीकार करता है ऐसा दातार लोभ के कम होने कर अहिंसा सरूप होता है ॥ १७३ ॥

इयमेकैवसमर्थाधर्मस्वंमेमयासमंनेतुं ।
सततमितिभावनीयापश्चिमसल्लेखनाभक्त्या॥१७४॥

अर्थ—यहही एक सल्लेखना मेरे धर्म रूपी धनको मेरे साथले चलने को समर्थ है ऐसी मरण समाधि निरंतर भक्ति सहित भावनी योग्य है ॥

भावार्थ--अब समाधि मरण को वर्णन करते हैं कि ऐसी भावना करके कि जोकुछ धर्म कियाहै और पुन्य कमाया है वह समाधि मरण केही कारण मरकर हमारे साथ जावेगा मरण निकट आया जान समाधि मरण करना योग्य है ॥ १७४ ॥

मरणान्तेऽवश्यमहंविधिनासल्लेखनांकरिष्यामि ।
इतिभावनापरिणतोनागतमपिपालयेदिदंशीलं१७५।

अर्थ—मैं मरने के समय विधिपूर्वक अवश्य समाधि मरण करूंगा ऐसी भावना करनेवाला जीव पहलेही से इस व्रत को पालता है ॥

भावार्थ—समाधि मरण उस समय कियाजाता है जब यह निश्चय होजाता है कि मरण निकट आगया परन्तु जो समाधि मरण की निरन्तर भावना रखता है उस के पहलेही इस भावना कर यह व्रत पलता है ॥ १७५ ॥

मरणेऽवश्यंभाविनिकषायसल्लेखनातनुकरणमात्रे ।
रागादिमंत्रेणव्याप्रियमाणस्यनात्मघातोस्ति।१७६॥

अर्थ—जो मरण अवश्य होनहार है उसके होतेहुये कषायों को घटाने रूप समाधि में रागादि भाव बिना देहके त्यागनेमें आत्मघात नहीं है ॥

भावार्थ—यदि कोई यह आशंका करे कि समाधि मरण में तो आत्मघात होता है इस श्लोक में उसका उत्तर देते हैं कि समाधि मरण में आत्मघात नहीं होता है क्योंकि वह अपना मरण आप नहीं चाहता है और न मरने का उद्यम करता है वर्ण जब उसको निश्चय होजाता है कि अब किसी उपाय से भी मरण रुकनहीं सक्ता है तब अपनी कषाय के घटाने का जिस तिस प्रकार उद्यम करता है।१७६॥

योहिकषायाविष्टःकुंभकजलधूमकेतुविषशस्त्रैः ।
व्यपरोपयतिप्राणान्तस्यस्यात्सत्यमात्मबधः।१७७।

अर्थ—जो जीव क्रोधादिक कषायके कारण अपने श्वास घोंटकर वा पानी में डूबकर वा अग्नि में जलकर वा विष खाकर वा शस्त्रकर अपना प्राणघात करता है उसके निःसंदेह आत्मघात होता है ॥ १७७ ॥

नीयन्तेत्रकषायाहिंसायाहेतवोयतस्तनुतां ॥
सल्लेखनामपिततःप्राहुरहिंसाप्रसिद्ध्यर्थं ॥ १७८ ॥

अर्थ—हिंसा का मूल कारण कषाय है और समाधि मरण में कषाय क्षीण होती है इस कारण आचार्य समाधि

मरण को भी अहिंसा की सिद्धि का हेतु कहते हैं ॥ १७८ ॥

इतियोव्रतरक्षार्थंसततंपालयतिसकलशीलानि ॥
वरयतिपतिंवरेवस्वयमेवतमुत्सुकाशिवपदश्रीः १७९

अर्थ--इसप्रकार जो पुरुष पंच अनुव्रत की रक्षाके अर्थ गुण व्रत शिक्षा व्रत आदिक सर्व प्रकार के शील पालता है उस पुरुष को स्वयम्वर के समान मोक्ष पद की लक्ष्मी आपही वरै है ॥

भावार्थ--बारह प्रकार के व्रत पालनेवाला श्रावक अवश्य मुक्तिपदका पात्र होजाता है ॥ १७९ ॥

अतिचाराःसम्यक्तेव्रतेषुशीलेषुपंचपंचेति ॥
सप्ततिरमीयथोदितशुद्धिप्रतिबंधिनोहेयाः ॥१८०॥

अर्थ--सम्यक्त, व्रत, शील, समाधि मरण इन प्रत्येक के पांच २ अतीचार हैं जो सर्व सत्तर ७० होते हैं यह अतीचार सम्यक्त व्रत आदिक की शुद्धि को दूर करनेवाले हैं इस कारण इन सब अतीचारों को त्यागना योग्य है ॥ १८० ॥

शंकातथैवकांक्षाविचिकित्सासंस्तवोन्यदृष्टीनां ॥
मनसाचतत्प्रशंसासम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ १८१ ॥

अर्थ--सम्यक्त के यह पांच अतीचार हैं (१) शंका अर्थात् जिन बाणी में शंका करनी (२) कांक्षा अर्थात् इस लोक वा परलोक सम्बन्धी वस्तु की बाञ्छा करनी (३) विचिकित्सा अर्थात् अनिष्ट वस्तु से ग्लानि करनी

(४) अन्यमती की बड़ाई करनी [५] मन में अन्यमती की प्रसंशा करनी ॥ १८१ ॥

छेदनताडनबंधाःभारस्यारोपणंसमधिकस्य ।
पानान्नयोश्चरोधःपंचाहिंसाव्रतस्येति ॥ १८२ ॥

अर्थ--अहिंसा व्रतके यह पांचअतीचार हैं (१) छेदन अर्थात् कान नाक हस्तादिक काटना (२) ताड़न अ-र्थात् लकड़ी कोडा आदिक से मारना [३] बंधन अर्थात् बांधना रोकना [४] अति भारा रोपण अर्थात् जितना बोझ उठासकै उस से अधिक बोझ लादना [५] खाने पीने को न देना भूखापियासा रखना ॥ १८२ ॥

मिथ्योपदेशदानंरहसोभ्याख्यानकूटलेखकृती ॥
न्यासापहारवचनंसाकारकुमंत्रभेदाश्च ॥ १८३ ॥

अर्थ--सत्य अनुव्रत के यह पांच अतीचार हैं [१] मिथ्या उपदेश देना [२] एकांत गुप्तवार्ता को प्रगटकरना [३] झूठलिखना [४] कोई अपने पास बहुत वस्तुरख जावै फिर भूलकर थोडी मांगे उसको कहना कि इतनी ही है [५] किसी की चेष्टाको देखकर उस के मन के अभिप्राय को जानकर प्रगटकरना ॥ १८३ ॥

प्रतिरूपव्यवहारः स्तेननियोगस्तदाहृतादानं ॥
राजविरोधातिक्रमहीनाधिकमानकरणेच ॥ १८४ ॥

अर्थ--अस्तेय अनुव्रत के यह पांच अतीचार हैं [१] थोडे मोल की वस्तु को बहुत मोल की वस्तु में मिला-

कर चलाना [२] चोरी करने की प्रेरणा करना या चोरी की अनुमोदना करना [३] चोरी का माल लेना [४] उचित न्याय के वा राजा की आज्ञा के विरुद्ध चलना [५] हीनाधिक तोल वा माप से लेनादेना ॥ १८४ ॥

स्मरतीव्राभिनिवेशानंगक्रीडान्यपरिणयनकरणं ॥
अपरिगृहीतेतरयोर्गप्रेनचेत्वरिकयोःपंच ॥ १८५ ॥

अर्थ--शील व्रतके यह पांच अतीचार हैं (१) काम सेवन में अधिक लोलुप्यता रखना (२) काम सेवने की इन्द्रियों के सिवाय अन्य अंगो से क्रीडा करना [३] किसी का विवाह कराना [४] किसीकी व्यभिचारिणी स्त्रीके पास जाना आना [५] विना व्याही हुई वेश्या आदिक खोटी स्त्री के पास जाना आना ॥ १८५ ॥

वास्तुक्षेत्राष्टापदहिरन्यधनधान्यदासदासीनां ।
कुप्यस्यभेदयोरपिपरिमाणातिक्रयाःपंच ॥ १८६ ॥

अर्थ--परिग्रह प्रमाण अनुव्रत के यह पांच अतीचार हैं [१] मकान जंगलकी धरती [२] रुपया पैसा [३] गाय बैल घोडा आदिक और अन्न आदिक (४) नौकर चाकर और दासी [५] रुई वा रेशम आदिक का वस्त्र इनका जो प्रमाण किया था उस प्रमाण का उलंघन करना १८६

ऊर्द्धमध्यस्तिर्यक्‌चव्यतिक्रमाःक्षेत्रवृद्धिराधानं ।
स्मृत्यंतरस्यगादिताःपंचेतिप्रथमशीलस्य ॥ १८७॥

अर्थ--दिग्व्रत नामा शील के यह पांच अतीचार हैं

लोभ के वश होकर [१] ऊँची दिशा की तरफ अधिक चढना [२] नीचे को अधिक उतरना [३] टेढी दिशा में अधिक जाना [४] क्षेत्रकी मर्यादा बढाना (५) मर्यादा को भूलजाना ॥ १८७ ॥

प्रेष्यस्यसंप्रयोजनमानयनंशब्दरूपविनिपातौ।
क्षेपोपिपुद्गलानाद्वितीयशीलस्यपंचेति ॥ १८८ ॥

अर्थ--देश ब्रत नामा शील के यह पांच अतीचार हैं [१] अपने किसी कार्य की सिद्धि के अर्थ किसी को मर्यादा से बाहर भेजना [२] प्रमाणित देश से बाहर से किसी वस्तु का मँगाना [३] बचन से कह कर प्रमाणित देश से बाहर कार्य कराना [४] क्षेत्र से बाहर अपना अभिप्राय समझाने के अर्थ अपने शरीरको दिखाना [५] पुद्गल वस्तु अर्थात् कंकड पत्थर फेककर कार्य कराना१८८।

कंदर्पः कौत्कुच्यंभोगानर्थक्यमपिचमौखर्यं ॥
असमीक्षिताधिकरणंतृतीयशीलस्यपंचेति॥१८९॥

अर्थ--अनर्थ दंड शीलके यह पांच अतीचार हैं [१] भंड बचन बोलना [२] काय से कौतुक अर्थात् हास्यरूप चेष्टा करनी [३] प्रयोजन विनाभोगोपभोगकी सामग्री इकट्ठी करनी (४) बिना प्रयोजन बकवाद करनी (५) बिना प्रयोजन विना बिचारे कामकरना ॥ १८९ ॥

बचनमनः कायानांदुःप्रणिधानंत्वनादरश्चैव॥
स्मृत्यनुपस्थानयुताःपंचेतिचतुर्थशीलस्य ॥ १९०॥

अर्थ--सामायिक शील के यह पांच अतीचार हैं (१)

परम अनीति अधरम रीतिगहे है। होहि न नरम चितगरम घरमहुते, चरमकी दृष्टिसों भरम भूली रहे है ॥ आसन न खोले मुख वचन न वोले सिर, नाएहू न डोले मानो पाथरके चहे है । देखनके हाउ भव पंथके वटाउ ऐसें, मायाके खटाउ अभिमानी जीव कहे है ॥ ४० ॥

सवैया इकतीसा—धीरके धरैया भवनीरके तरैया भय,भीरके हरैया वर वीर ज्यों उमहे हैं । मारके मरैया सुवीचारके करैया सुख, ढारके ढरैया गुनलोसों लह लहेहैं ॥ रूपके रिझैया सवनैके समुझैया सव,हीके लघुभैया सवके कुवोल सहे हैं । वामके वमैया दुखदाम के दमैया ऐसे, रामके रमैया नर ज्ञानी जीव कहे हैं ॥ ४१ ॥

चौपाई ।

जे समकिती जीव समचेती । तिन्हिकी कथाकहोंतुमसेती ॥
जहां प्रमाद क्रियानहि कोई। निर्विकल्पअनुभो पदसोई ४२॥
परिग्रहत्याग जोगथिरतीनो। करम वंध नहि होइ नवीनो ॥
जहां न राग दोष रस मोहे। प्रगट मोखमारग मुख सोहे४३
पूरव वंध उदे नहि व्यापे। जहां न भेद पुन्न अरु पापे ॥
दरवभाव गुन निर्मल धारा। वोधाविधानविविधिविस्तारा४४
जिन्हिके सहज अवस्था ऐसी। तिन्हिके हिरदे दुविधा केसी॥
जे मुनिक्षिपकश्रेणि चढ़िधाये। ते केवलि भगवान कहाये४५॥

दोहा—इहिविधि जे पूरन भये, अष्ट करम वनदाहि ॥
तिन्हिकी महिमा जो लखे,नमे वनारसि ताहि॥ ४६ ॥

छप्पय छन्द—भयो शुद्ध अंकूर, गयो मिथ्यात् मूर नशि ।

क्रमक्रम होत उदोत, सहजजिम शुक्लपच्छ शशि ॥ केवल रूप प्रकासि, भासि सुख रासि धरम धुव। करिपूरन थित आउ त्यागि गतभाव परम हुव॥ इहविधि अनन्य प्रभुता धरत, प्रगटि बूंद सागर भयो। अविचल अखंड अनभय अखय, जीव दरव जगमहि जयो ॥ ४७ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञानावरनीके गये जानिये जु है सु सब, दंसनावरनके गयेतें सब देखिये। वेदनी करमके गयेते निरा बाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित विसेखिये ॥ आउ कर्म गये अवगाहन अटल होइ, नाम कर्म गयेते अमूरतीक पेखिये। अगुरुलघुरूप होई गोत कर्मगये, अंतराय गयेतें अनंत बल लेखिये ॥ ४८ ॥

इति श्री नाटक समयसार विषै नवमो मोक्ष द्वार समाप्तः
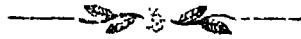
१० अध्याय सरव विशुद्धि द्वार

दोहा—इति श्रि नाटिक ग्रंथमें, कह्योमोक्षअधिकार।
अब वरनों संक्षेपसों, सरब विशुद्धि द्वार ॥ ४९ ॥

सवैया इकतीसा—करमको करताहै भोगनिको भोगताहै, जाकी प्रभुतामें ऐसो कथन अहितहै। जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नांहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहितहै ॥ ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है सुभाउ जाको, लोक व्यापी लोकातीति लोकमें महितहै। शुद्ध वंस शुद्ध चेतना के रस अंश भर्यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहितहै ॥५०॥

दोहा—जो निहचेनिरमलसदा,आदि मध्यअरु अंत।
सो चिद्रूप बनारसी, जगतमांहि जय वंत ॥ ५१ ॥

चौपाई।

जीव करमकरता नाहि ऐसो। रस भोगता सुभाउ न जैसो ॥
मिथ्यामतिसों करताहोई। गये अज्ञान अकरतासोई॥५२॥

सवैया इकतीसा—निहचे निहारत सुभाउ जाहि आतमाको, आतमीक धरम परम परगासना। अतीत अनागत बरतमान काल जाको, केवल सरूप गुन लोकालोक भासना ॥ सोई जीव संसार अवस्थामांहि करमको, करतासो दीसे लिये भरम उपासना। यहे महा मोहके पसार यहे मिथ्याचार, यहे भौ विकार यहे व्यवहार बासना ॥ ५३ ॥

चौपाई।

जथा जीव करता न कहावे। तथा भोगता नाउ न पावै ॥
है भोगी मिथ्या मतिमांही। मिथ्यामती गयेतें नांही॥५४॥

सवैया इकतीसा—जगबासी अज्ञानी त्रिकाल परजाय बुद्धी, सोतो विषे भोगनिको भोगता कहायो है। समकिती जीव जोग भोगसों उदासी तातें, सहज अभोगता गरंथनि में गायो है ॥ याही भांति वस्तुकी व्यवस्था अवधारे बुध, परभाउ त्यागि अपनो सुभाउ आयो है। निर विकलप निरुपाधि आतमा अराधि, साधि जोग जुगति समाधि में समायो है॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन, रतन भंडारी अपहारी कर्म रोग को। प्यारो पंडितनिको हुस्यारो मोष मारग में, न्यारो पुद्गलसों उजियारो

उपयोगको ॥ जाने निज पर तत्त रहे जग में विरत्त, गहे न ममत्त मन बच काय जोगको । ता कारन ज्ञानी ज्ञानावरनादि करम को, करता न होइ भोगता न होइ भोग को ॥ ५६ ॥

दोहा—निरभिलाष करनी करे, भोग अरुचिघटमांहि ।
तातें साधक सिद्ध सम, करताभुगता नांहि ॥५७॥

कवित्त छंद—ज्यों हिय अंध विकल मिथ्या धर, मृषा सकल विकलप उपजावत । गहि एकन्त पच्छ आतमको, करता मानि अधोमुख धावत ॥ त्यों जिनमती दरब चारित कर, करनी करि करतार कहावत । वंछित मुक्ति तथापि मूढ़ मति, बिनु समकित भवपार न पावत ॥ ५८ ॥

चौपाई ।

चेतनअंक जीव लखि लीन्हा । पुद्गलकरमअचेतनचीन्हा ॥
वासी एक खेत के दोऊ । यदपितथापि मिलेनहिंकोऊ ॥५९॥

दोहा—निज निज भाउक्रिया सहित, व्यापक व्यापिनकोइ ।
करता पुद्गलकरमको, जीव कहांसों होइ ॥ ६० ॥

सवैया इकतीसा—जीव अरु पुद्गल करम रहे एक खेत, जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है । लच्छन सरूप गुन परजे प्रकृति भेद, दुहूमें अनादिहीकी दुबिधा व्है रही है ॥ एते परि भिन्नता न भासे जीव करमकी, जौलौं मिथ्या भाउ तौलौं ओंधी बाउ बही है । ज्ञान के उदोत होत ऐसी सूधी दृष्टि भई, जीव कर्म पिण्ड को अकरतार सही है ॥ ६१ ॥

दोहा—एक वस्तु जैसी जुहे, तासों मिले न आन ।

जीव अकर्ता करमको, यह अनुभो परवान ॥ ६२ ॥

चौपाई ।

जे दुरमती विकल अज्ञानी । जिन्हिसुरीतिपररीतिनजानी ।
मायामगनभरमके भरता । ते जिय भावकरमकेकरता॥६३॥

दोहा—जे मिथ्यामतितिमरसों, लखे न जीव अजीव ।
तेई भावित करम के, करता होइ सदीव ॥ ६४ ॥
जे अशुद्ध परिनति धरे, करे अहं परवान ।
ते अशुद्ध परिनाम के, करता होइ अजान ॥ ६५॥
शिष्य कहे प्रभु तुम्हकह्यो, दुविधकरमकोरूप ।
दर्व कर्म पुद्गल मई, भाव कर्म चिद्रूप ॥ ६६ ॥
करता दरवित करमको, जीवनहोइ त्रिकाल ।
अबइहभावितकरमतुम, कहो कौनकीचाल ॥ ६७॥
करता याको कौनहै, कौन करै फल भोग ।
के पुद्गल के आतमा, के दुहुको संयोग ॥ ६८॥
क्रियाएक करतायुगल, यों न जिनागममांहि ।
अथवा करनी औरकी, और करै यों नांहि ॥ ६९॥
करे और फल भोगवे, और बने नहि एम ।
जो करता सो भोगता, यहे यथावत जेम ॥ ७०॥
भाव कर्म कर्त्तव्यता, स्वयं सिद्ध नहि होइ ।
जो जगकी करनी करे, जगवासी जियसोइ ॥ ७१ ॥
जियकरता जियभोगता,भावकर्म जियचालि ।
पुदगल करे न भोगवे,दुविधा मिथ्या जालि ॥ ७२ ॥
तातें भावित करमकों, करे मिथ्याती जीव ।
सुख दुख आपद संपदा, भूँजे सहज सदीव ॥ ७३ ॥

सवैया इकतीसा—केई मूढ़ विकल एकंत पख गहे कहै, आतमा अकरतार पूरन परमहै । तिन्हसों जु कोउकहे जीव करता हे तासों, फेरीकहै करमको करता करम है ॥ ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्म घाती जीव, जिन्हके हिये अना दि मोह को भरम है । तिन्हको मिथ्यात दूरि करिवेको कहै गुरु स्यादवाद परवान आतम धरम है ॥ ७४ ॥

दोहा—चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान ।
नहिकरता नाहि भोगता,निहचे सम्यकज्ञान ॥ ७५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसें सांख्यमति कहै अलख अकरता है,सर्वथा प्रकार करता न होइ कबही । तैसें जिनमति गुरु मुख एक पक्ष सुनि, याही भांति मानै सो एकंत तजो अ· बही ॥ जोलों दुरमति तौलों करमको करता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सबही । जाके घट ज्ञायक सुभाउ जग्यो जब ही सो, सोतो जग जालसों निरालो भयोतबही ॥ ७६ ॥

दोहा—बोध छिनक वादी कहै, छिनु भंगुर तनुमांहि ।
प्रथम समे जो जीवहे, दुतिय समे सो नांहि ॥ ७७ ॥
ताते मेरे मतविषे, करे करमजो कोइ ।
सो न भोगवे सरवथा, और भोगता होइ ॥ ७८ ॥
यह एकंत मिथ्यात पख, दूरि करनके काज ।
चिदविलासअविचलकथा,भाषैश्रीजिनराज ॥ ७९ ॥
बालापन काहू पुरुष, देख्यो पुर कइ कोइ ।
तरुन भये फिरिके लख्यो,कहे नगर यह सोइ ॥ ८० ॥
जो दुहुपनमें एकथो, तो तिन्हि सुमिरन कीय ।
और पुरुषको अनुभव्यो, और न जाने जीय ॥ ८१ ॥

जबयह वचन प्रगटसुन्यो,सुन्यो जैनमतशुद्ध ।
तब इकांत वादी पुरुष, जैन भयो प्रति बुद्ध ॥ ८२ ॥

सवैया इकतीसा—एक परजाय एक समैमें विनसि जाइ, दूजी परजाय दूजे समै उपजति है । ताको छल पकरि के बोध कहै समै समै, नवो जीव उपजे पुरातन की घति है॥ ताते मानै करमको करता है और जीव, भोगता है और वाके हिए ऐसी मतिहै । परजै प्रवानको सरवथा दरवजाने, ऐसे दुरबुद्धिकों अवश्य दुरगति है ॥ ८३ ॥

दोहा—दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्या चाल ।
गहि एकंत दुर्बुद्धिसों, मुकति न होइत्रिकाल ॥ ८४ ॥
कहै अनातमकी कथा, चहै न आतम शुद्धि ।
रहै अध्यातमसों विमुख, दुराराधि दुर्बुद्धि ॥८५॥

सवैया इकतीसा—कायासें विचारि प्रीति मायाहि में हारि जीति, लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी । चूंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्योंही पाई गाडे पैं न छांडे टेक पकरी ॥ मोहकी मरोरसों भरमको न ठोरपावे, धावे चिहु ओर ज्यों बढावे जाल मकरी । ऐसी दुर्बुद्धि भूलि झूठ के झरोखे झूलि, फूली फिरे ममता जंजीरानि सों जकरी ॥ ८६ ॥

सवैया इकतीसा—बात सुनि चौकउठे बातहिसों भौंकी उठे, बातसों नरम होइ बातहींसोअकरी । निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी ॥ मोख न सुहाइ दोख देखै तहां पैठि जाई, कालसो डराई जैसे नाहरसों बकरी । ऐसी दुरबुद्धि भूलि

जूठके झरोखेझूलि,फूलीफिरैममता जंजीरनिसों जकरी८७॥

कवित्त छन्द—केई कहै जीव छिन भंगुर, केई कहै करम करतार। केई कर्म रहित नित जंपहि, नय अनंत नाना परकार॥ जे एकंत गहै ते मूरख, पंडित अनेकांत पख-धार। जैसे भिन्न भिन्न मुक्तागन, गुनसों गहत कहा-वे हार ॥ ८८ ॥

दोहा—जथा सूतसंग्रहविना, मुक्तमाल नाहि होइ।
तथा स्याद्वादी विना, मोख न साधे कोई ॥ ८९ ॥
पद सुभाउ पूरबउदै, निहचै उद्दिम काल।
पक्षपात मिथ्यातपथ, सरबंगी शिव चाल ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसा—एक जीव वस्तु के अनेक रूप गुन नाम, निरजोग शुद्ध पर जोग सों अशुद्ध है। वेद पाठी ब्रह्म कहै मीमांसक कर्म कहे, शिवमति शिव कहै बोध कहे बुद्ध है॥ जैनी कहै जिन न्यायवादी करतार कहै,छहौं दरसनमें बचनको विरुद्ध है। वस्तुको सरूप पहिचाने सोइ परवीन, बचनके भेदभेद मानेसोइ शुद्ध है॥ ९१ ॥

सवैया इकतीसा—वेदपाठी ब्रह्म मानै निहचै स्वरूप गहै, मीमांसक कर्म माने उदैमें रहतुहै। बोधमति बुद्धमाने सू-क्षम सुभाउ साधै, शिवमती शिवरूप कालको हरतुहै॥ न्याय ग्रंथके पढैया थापे करतार रूप, उद्दिम उदीरि उर आनंद लहतुहै। पांचो दरसनी तेतो पोषे एक एक अंग, जैनी जिनपंथी सरवंगी नै गहतुहै ॥ ९२ ॥

सवैया इकतीसा—निहचै अभेद अंग उदै गुनकी तरंग, उद्यम की रीति लिये उद्धता सकति है। परजाय रूपको

प्रवान सूक्षम सुभाउ, काल कीसी ढाल परिनाम चक्रगति है ॥ याही भांति आतम दरबके अनेक अंग, एक माने एक कों न माने सो कुमति है । टेक डारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि, खोजी जीवे वादी मरे साची कहवतिहै ॥ ९३॥

सवैया इकतीसा—एकमें अनेक है अनेकही में एकहै सु, एक न अनेक कछु कह्यो न परतु है । करता अकरता है भोगता अभोगता है, उपजे न उपजिति मूए न मरतु है ॥ बोलत विचारत न बोले न विचारे कछु, भेषको न भाजन पै भेखसो धरतु है । ऐसो प्रभु चेतन अचेतन की संगती सो, उलट पलट नट वाजी सी करतु है ॥ ९४ ॥

दोहा—नटबाजी विकलपदसा, नाही अनुभौ जोग ।
केवल अनुभौ करनको, निरविकलप उपयोग ॥ ९५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे काहु चतुर संवारी है मुगतमाल, मालाकी क्रियामें नाना भांतिको विज्ञान है । क्रियाको विकलप न देखे पहिरन वालो, मोतीन की शोभमें मगन सुख वान है ॥ तैसें न करे न भुजे अथवा करे सु भुजे, ओर करे ओर भुजे सब नै प्रवान है । यद्यपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग, निरविकलप अनुभो अमृत पानहै ॥ ९६ ॥

दोहा—दरब करम करता अलख, यहु विवहार कहाउ ।
निहचे जोजे सोदरब, तैसो ताको भाउ ॥ ९७ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञानको सहज ज्ञेयाकाररूप परिनमे, यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञानरूप कह्यो है । ज्ञेयज्ञय रूप यों अनादिहीकी मरजाद, काहु वस्तु काहुको सुभाउ नाहि गह्यो है ॥ एते परि कोउ मिथ्या माति कहे ज्ञयकार, प्रति भा-

सनिसों ज्ञान अशुद्ध व्है रह्यो है । याहि दुरबुद्धिसों विकल भयो डोलत है, समुझे न धरमयों भर्ममाहि वह्योहै ॥ ९८ ॥

चौपाई ।

सकल वस्तु जगमें असुहाई । बस्तु वस्तुसों मिले न काई ॥
जीव वस्तु जाने जग जेती । सोऊ भिन्न रहे सबसेती ९९॥

दोहा—करम करै फल भोगवै, जीव अज्ञानी कोइ ।
यहकथनी व्यवहारकी, वस्तु स्वरूप न होइ ॥ ४०० ॥

कवित्त छंद—ज्ञेआकार ज्ञानकी परिनति, पैं वह ज्ञान ज्ञेय नाहि होइ । ज्ञेय रूप षट दरव भिन्न पद, ज्ञानरूप आतम पदसोइ ॥ जाने भेद भाउ सुविचक्षनगुन लच्छन सम्यक दृग जोइ । मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नाहि कोइ ॥ १ ॥

चौपाई ।

निराकार जो ब्रह्म कहावे । सो साकार नाम क्यों पावे ॥
ज्ञेयाकार ज्ञान जब तांई । पूरन ब्रह्म नाहि तबतांई ॥२॥
ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने । नास करनको उद्दिम ठाने ॥
वस्तु सुभाउमिटे नहिक्योंही । ताते खेद करे सठयोंही ॥ ३ ॥

दोहा—मूढ मरम जाने नही, गहे इकांत कुपक्ष ।
स्यादवाद सरवंग में, माने दच्छ प्रतक्ष ॥ ४ ॥
शुद्ध दरव अनुभौकरे, शुद्ध दृष्टि घट मांहि ।
ताते सम्यकवन्तनर, सहज उछेदक नाहि ॥ ५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसें चन्दकिरन प्रगटि भूमि सेतकरे, भूमि सीत होति सदा जोतिसी रहति है । तैसें ज्ञान सकति प्रकासे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पे न ज्ञेयकों ग-

गहाति है ॥ शुद्ध वस्तु शुद्ध परजाय रूप परिनमै, सत्ता परवान मांहि ढाहे न ढहाति है । सो तो औररूप कबहो न होइ सरवथा, निहचे अनादि जिन बानी यों कहति है ॥ ६ ॥

सवैया तेईसा—राग विरोध उदे तबलों जबलों यह जीव मृषामग धावे । ज्ञान जग्यो जब चेतनको तब कर्म दशा पररूप कहावे ॥ कर्म विलेछि करे अनुभो तब मोह मिथ्यात प्रवेश न पावे । मोह गये उपजे सुख केवल सिद्ध भयो जगमांहि न आवे ॥ ७ ॥

छप्पय छन्द—जीव करम संयोग, सहज मिथ्यात रूप धर । राग दोष परिनति, प्रभाव जाने न आपपर ॥ तम मिथ्यात मिटिगयो, भयो समकित उदोत ससि । राग दोष कछु वस्तु नाहि छिनु माहि गये नसि ॥ अनुभो अभ्यासि सुखराशिरमि, भयो निपुन तारन तरन । पूरनप्रकाश निहचलि निरखि, बनारसी बंदत चरन ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ शिष्य कहे स्वामी राग दोष परिनाम, ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कोन है । पुग्गल करम जोग किधों इन्द्रिनिको भोग, किधों धन किधोंपरिजन किधों भोन है ॥ गुरु कहे छहों दर्व अपने अपनेरूप, सबनिको सदा असहाई परीनोन है । कोउ दर्व काहु को न प्रेरक कदाचि ताते, राग दोष मोह मृषा मदिरा अचोन है ॥ ९ ॥

दोहा—कोऊ मूरख यों कहै, राग दोष परिनाम ।
पुग्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम ॥ १० ॥

ज्योंज्योंपुग्गल बलकरे, धरिधरि कर्मज भेष।
राग दोषको परिनमन, त्यों त्यों होइ विशेष॥ ११॥
इहबिधि जो विपरीतिपख, गहे सद्दहे कोइ।
सो नर राग विरोधसों, कबहूं भिन्नन होइ॥ १२॥
सुगुरु कहे जगमें रहे, पुग्गल संग सदीव।
सहज शुद्ध परिनमनको, औसर लहेन जीव॥ १३॥
ताते चिदभावन विषे, समरथ चेतन राउ।
राग विरोध मिथ्यातमें सम्यकमें सिवभाउ॥ १४॥
ज्यों दीपक रजनीसमै, चिहुदिसिकरे उदोत।
प्रगटे घट पट रूपमें, घट पट रूप न होत॥ १५॥
त्यों सु ज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म।
ज्ञेयाकृति परिनमनपे, तजै न आतम धर्म॥ १६॥
ज्ञानधर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ।
राग विरोध विमोहमय, कबहूं भूलि न होइ॥ १७॥
ऐसी महिमा ज्ञानकी, निहचै है घट मांहि।
मूरख मिथ्या दृष्टिसों, सहज विलोके नांहि॥ १८॥
परसुभाव में मगन व्है, ठाने राग विरोध।
धरै परिग्रह धारना, करे न आतम सोध॥ १९॥

चौपाई।

मूरख के घट दुरमति भासी। पंडितहिए सुमति परगासी॥
दुरमति कुबजा करमकमावे। सुमतिराधिकारामरमावे॥२०॥

दोहा—कुबजा कारी कूबरी, करे जगत में खेद।
अलख अराधे राधिका, जाने निजपर भेद॥ २१॥

सवैया इकतीसा—कुटिल कुरूप अंग लगीहै पराए संग,

अपनो प्रवान करि आपुहि विकाई है । गहे गति अंधकी-सी सकती कमंधकीसी, बंधको वढ़ाउ करे धंधहीमें धाईहै॥ रांडकीसी रीति लिए मांडकीसी मतवारी, सांड ज्यों सुछंद डोले भांडकीसी जाईहै । घरको न जाने भेद करे पराधनी खेद. याते दुर्बुद्धि दासी कुबजा कहाई है ॥ २२ ॥

सवैया इकतीसा—रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील, सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाईहै । प्राची ज्ञान भानकी अजाची है निदानकी सु, राची नरवाची ठोर साची ठकुराई है ॥ धामकी खबरदार रामकी रमन हार, राधारस पंथनिमें ग्रंथनिमें गाईहै । संतनिकी मानी निरवानी नूरकी निसानी, याते सदबुद्धि रानी राधिका कहाईहै ॥ २३ ॥

दोहा—वह कुबजा वह राधिका, दोऊ गति मति मान ।
वह अधिकारनि करमकी, यह विवेककीखान ॥ २४ ॥
दरव करम पुद्गल दसा, भाव कर्म मति वक्र ।
जो सुज्ञानको परि नमन, सो विवेक गुनचक्र ॥ २५ ॥

कवित्त छंद—जैसे नर खेलार चोपरको, लाभ विचार करै चित चाउ । धरि सवारि सावुद्धी बलसों, पासाको कुछु परे सुदाउ ॥ तैसें जगत जीव स्वारथको, करि उद्यम चिंतवे उपाउ । लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको यही सुभाउ२६

कवित्त छंद—जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सब सतरंजकी घात । चले चाल निरखै दोऊ दल, मोह राग न विचारे मात ॥ तैसे साधु निपुन शिव पथमें, लक्षन लखे तजे उतपात । साधे पुन्य चिंतवे अभै पद, यह सुविवेक चक्रकी बात ॥ २७॥

दोहा—सतरँज खेले राधिका, कुबजा खेले सारि ।

याकेनिसिदिनजीतवो,वाकेनिसिदिनहारि॥ २८ ॥
जाके उर कुवजा बसे, सोई अलख अजान।
जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यकवान॥ २९॥

सवैयाइकतीसा—जहांशुद्ध ज्ञानकी कलाउद्योत दीसे तहां, शुद्ध परवान शुद्ध चारित्रको अंस है। ता कारन ज्ञानी सव जाने ज्ञेय वस्तु मर्म,वैराग विलास धर्म वाको सरबंसहै॥ राग दोष मोहकी दसासों भिन्न रहे याते, सर्वथा त्रिकाल कर्मजालको विध्वंसहै। निरूपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरन परमहंस है॥ ३०॥

दोहा—ज्ञायक भाव जहां तहां, शुद्ध चरनकी चाल।
ताते ज्ञान विराग मल, सिवसाधे समकाल॥ ३१॥
यथा अंधके कंध परि, चढ़ै पंगु नर कोइ।
वाके दृग वाके चरण,होहिपथिकमिलिदोइ॥ ३२॥
जहांज्ञान किरिया मिले,तहां मोक्षमग सोइ।
वह जाने पदको मरम, वह पदमें थिरहोइ॥ ३३ ॥
ज्ञान जीवकी सजगता, करम जीवकी भूल।
ज्ञान मोक्ष अंकूर है, करम जगतको मूल॥ ३४ ॥
ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम।
कर्म चेतनामें वसे, कर्म बंध परिनाम॥ ३५ ॥

चौपाई।

जबलग ज्ञान चेतना भारी। तबलगु जीव विकल संसारी॥
जबघट ज्ञान चेतना जागी। तब सम किती सहज वैरागी॥३६॥
सिद्ध समान रूप निज जाने। पर संजोग भाव परमाने॥
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासे। त्रिविधकरमकी ममतानासे॥३७॥

दोहा—ज्ञानवंत अपनी कथा, कहै आपसों आप ।
मैं मिथ्यात दसाविषे, कीने बहुविधि पाप ॥ ३८ ॥

सवैया इकतीसा—हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताही. ताते हम करुना न कीनी जीव घातकी । आप पाप कीने ओरनकों उपदेश दीने, हूती अनमोदना हमारे याही बातकी ॥ मन वच कायमें मगन व्है कमाए कर्म, धाए भ्रम जालमें कहाए हम पातकी । ज्ञानके उदे भए हमारी दशा ऐसी भई, जैसी भान भासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ३९ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञान भान भासत प्रवान ज्ञानवान कहे, करुना निधान अमलान मेरो रूप है । कालसों अतीत कर्म चालसों अभीत जोग, जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है ॥ मोहको विलास यह जगतको वासमें तो, जगतसों शुन्य पाप पुन्य अंधकूप है । पाप किन कियो कौन करे करिहै सु कौन, क्रियाको विचारसुपनेकी धौरधूपहै ४०॥

दोहा—मैं यों कीनौ यों करौं, अब यह मेरो काम ।
मन वच कायामें बसे, ए मिथ्या परिनाम ॥ ४१ ॥
मनवच काया करमफल, करमदशा जडअंग ।
दरवित पुद्गल पिंडमें, भावित भरम तरंग ॥ ४२ ॥
तांते भावित धरमसो, करम सुभाव अपूठ ।
कौन करावे को करे, कोसर लहे सब जूठ ॥ ४३ ॥
करनी हितहरनी सदा, मुकति वितरनीनांहि ।
गनी बंध पद्धति विषे, सनी महा दुख मांहि ॥ ४४ ॥

सवैया इकतीसा—करनी की धरनी में महा मोह राजा

बसे, करनी अज्ञानभाव राकसकी पुरी है। करनी करम काया पुग्गल की प्रती छाया करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है॥ करनी के जालमें उरझि रह्यो चिदानंद करनीकी उट ज्ञान भान दुति दुरीहै। आचारज कहे करनीसों विव-हारी जीव करनी सदीव निहचै सरूप बुरी है॥ ४५॥

चौपाई।

मृषा मोहकी परिनति फैली। तातें करम चेतना मैली॥
ज्ञान होत हम समुझी एती। जीवसदीवभिन्नपरसेती॥४६॥

दोहा—जीवअनादिसरूपमम, करम रहित निरुपाधि।
अविनाशीअशरनसदा, सुखमयसिद्धसमाधि॥ ४७॥

चौपाई।

मैं त्रिकाल करणीसों न्यारा। चिदविलासपदजगतउज्यारा॥
रागविरोधमोह ममनांही। मेरो अवलंबन मुझमांही॥४८॥

सवैया तेईसा—सम्यकवन्त कहे अपने गुन, में नित राग विरोध सों रीतो। मैं करतूति करों निरवंछक, मोह बिषे रस लागत तीतो॥ सुद्ध सुचेतनको अनुभौ करि, मैं जग मोह महाभड़ जीतो। मोष समीप भयो अब मोकहुं, कालअनंत इहीविधि बीतो॥ ४९॥

दोहा—कहे विचक्षनमेंसदा, रह्यो ज्ञानरस राचि।
सुद्धातम अनुभूतिसों,खलितनहोइ कदाचि॥ ५०॥
पूर्व करम विष तरु भये, उदे भोग फल फूल।
मैं इन्हको नहिं भोगता, सहजहोहुं निरमूल॥ ५१॥
जो पूरब कृत कर्म फल, रुचिसों भुंजे नाहि।
मगन रहे आठो पहुर, शुद्धातम पदमांहि॥ ५२॥

सो बुध कर्मदसा रहित, पावे मोख तुरंत।
भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत॥ ५३ ॥

छप्पय छंद—जो पूरव कृतकर्म, विरष विषफल नहिभुंजे। जोग जुगति कारज करंत ममता न प्रजुंजे॥ राग विरोध निरोध संग; विकलप सवि छंडे। शुद्धातम अनुभौ अभ्यासि, शिव नाटक मंडे॥ जो ज्ञान वंत इहमग चलत, पूरन व्है केवल लहे। सो परम अतींद्रिय सुख विषे, मगनरूप संतत रहे॥ ५४ ॥

सवैया इकतीसा—निरभै निराकुल निगमवेद निरभेद, जाके परगासमें जगत माइयतुहै। रूप रसगंध फास पुदगल को विलास, तासों उदवंश जाको जश गाइयतु है॥ विग्रहसों विरत परिग्रहसें न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतुहै। सो है ज्ञान परवान चेतन निधान ताहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—जैसो नर भेदरूप निहचें अतीत हुतो, तैसो निरभेद अब भेदको न गहेगो। दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निज थान फिर बाहिर न वहेगो॥ कवहु कदाचि अपनो सुभाउ त्यागि करि, राग रस राचिके न परवस्तु गहेगो। अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, याही भांति आगम अनंत काल रहेगो॥ ५६ ॥

सवैया इकतीसा—जबहितें चेतन विभाउसों उलटि आपु, समौ पाइ अपनो सुभाउ गहि लीनो है। तबहीते जो जो लेन जोग सो सो सब लीनो, जो जो त्याग जोग सो सो सब छांडि दीनोहै॥ लेवेको नरही ठोर त्यागिवेको नांही और,

बाकी कहा उबर्‍यो जु कारज नवीनोहै । संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनौ है ॥ ५७ ॥

दोहा—शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोइ ।
तातै कारन मोखको, दरबलिंगि नहिहोइ ॥ ५८ ॥
द्रव्य लिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विन्यान ।
अष्टमहारिधि अष्टसिधि, एऊ होहि न ज्ञान ॥ ५९ ॥

सवैया इकतीसा—भेषमें न ज्ञान नहि ज्ञानगुरु वर्त्तनमें, मंत्र जंत्र तंत्रमें न ज्ञानकी कहानीहै । ग्रंथमें न ज्ञान नहिं ज्ञान कवि चातुरीमें, वातनिमें ज्ञान नहीं ज्ञान कहा बानी है ॥ तातें भेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र वात, इनतें अतीत ज्ञान चेतना निसानीहै । ज्ञानहीमें ज्ञाननही ज्ञान औरठौर कहू, जाके घट ज्ञान सोइ ज्ञानको निदानी है ॥ ६० ॥

सवैया इकतीसा—भेष धरे लोगनिकों बंचे सो धरम ठग, गुरुसो कहावे गुरुवाई जाते चहिये । मंत्र तंत्र साधक कहावे गुनी जादूगर, पंडित कहावे पंडिताई जामें लहिये ॥ कवित्तकी कलामें प्रवीन सो कहावे कवि, वात कही जाने सो पवारगीर कहिये । ए तो सव विपके भिखारी माया धारी जीव, इन्हकों विलोकिकें दयालरूप रहिये ॥ ६१ ॥

दोहा—जो दयालता भाव सो, प्रगट ज्ञानको अंग ।
पैं तथापि अनुभौ दशा, वरतै विगत तरंग ॥ ६२ ॥
दरशन ज्ञानचरण दशा, करे एक जो कोइ ।
थिर व्है साधे मोखमग, सुधी अनुभवी सोइ ॥ ६३ ॥

सवैया इकतीसा—जोइ दृग ज्ञान चरणातममें ठटि ठोर भयो निरदोर परबस्तुकों न परसे । सुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धतामें केलि करे, शुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा वरसे ॥ त्यागी तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमकों, करे थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसे । सोइ विकलप विजई अलप कालमांहि, त्यागि भो विधान निरबान पद दरसे ॥ ६४ ॥

चौपाई ।

गुन परजे में दृष्टि न दीजे । निरविकलपअनुभौरसपीजे॥
आपसमाइ आपमें लीजे । तनपा मेटि अपनपौकीजे ॥६५॥

दोहा—तजिविभावहुइजे मगन, सुद्धातम पदमांहि ।
एक मोष मारगयहे, और दूसरो नांहि ॥ ६६ ॥

सवैया इकतीसा—कइ मिथ्या दृष्टि जीव धारेजिन मुद्रा भेष, क्रिया में मगन रहे कहे हम जती हैं । अतुल अखंड मल रहित सदा उदोत, ऐसे ज्ञान भाव सों विमुख मूढ़ मति हैं ॥ आगम सँभाले दोष टाले विवहार भाले, पाले वृत्त यद्यपि तथापि अविरती हैं । आपुकों कहावे मोष मारग के अधिकारी, मोष सों सदीव रुष्ट दुष्ट दुरगति हैं ॥ ६७ ॥

दोहा—जे विवहारी मूढ़ नर, परजे बुद्धी जीव ।
तिनको बाहिज क्रीयको, है अवलम्बसदीव ॥ ६८ ॥

चौपाई ।

जैसे मुगध धान पहिचाने । तुष तंदुलको भेद नजाने ॥
तैसेमूढ़मती व्यवहारी । लखेन बंधमोष विधिन्यारी ॥ ६९ ॥

दोहा—कुमती बाहिज दृष्टिसों, बाहिज क्रिया करंत।
माने मोष परंपरा, मन में हरष धरंत ॥ ७० ॥
शुद्धातम अनुभो कथा, कहे समकितीकोइ।
सो सुनिके तासोंकहे, यह शिवपंथ न होइ ॥ ७१ ॥

कवित्त—जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि मुद्रा धारि क्रिया प्रवानहि। ते हिय अंध बंध के करता, परमतत्व को भेद न जानहि ॥ जिन्ह के हिये सुमतिकी कनिका, बाहिज क्रिया भेष परमानहि। ते समकिती मोष मारगमुख, करि प्रस्थान भव स्थिति भानहि ॥ ७२ ॥

सवैया इकतीसा—आचारिजकहे जिन बचनको विसतार, अगम अपार है कहेंगे हम कितनो। बहुत बोलबे सों न मकसूद चुप भली, बोलिये सु बचन प्रयोजनहै जितनो ॥ नाना रूप जलप सों नाना विकलप उठे, ताते जेतो कारिज कथन भलो तितनो। शुद्धपरमातमको अनुभौ अभ्यास कीजे, यहे मोषपंथ परमारथ है इतनो ॥ ७३ ॥

दोहा—सुद्धातम अनुभौ क्रिया, सुद्ध ज्ञान दृग दौर।
मुकतिपंथ साधन वहे, वाग जाल सब और ॥ ७४ ॥
जगत चक्षु आनन्दमय, ज्ञान चेतना भास।
निर्विकल्प साश्वतसुथिर, कीजेअनुभौ तास ॥ ७५ ॥
अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरन वीत ममत्व।
ज्ञानगम्य बाधा रहित सो है आतम तत्व ॥ ७६ ॥

इतिश्रीनाटकसमयसारविषैं दशमसरवविसुद्धिद्वारसंपूर्ण।

११ अध्याय स्याद्वादद्वार ।

दोहा—सरव विसुद्धीद्वारयह, कह्यो प्रगट शिवपंथ ।
कुंद कुंद मुनिराज कृत, पूरन भयो गरंथ ॥७७॥

चौपाई ।

कुंद कुंद मुनिराज प्रवीना । तिन्ह यह ग्रंथ इहांलोंकीना ॥
गाथा बद्ध सुप्राकृतबानी । गुरु परंपरा रीति बखानी ॥७८॥
भयो ग्रंथ जगमें विख्याता । सुनत महासुख पावहिज्ञाता ॥
जे नवरस जगमांहि बखाने । ते सवरसमेंसारसमाने ॥७९॥

दोहा—प्रगटरूप संसारमें, नवरस नाटक होइ ।
नवरस गर्वित ज्ञान में, विरला जानै कोइ ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा—सोभा में सिंगार वसै वीर पुरुषारथ में, हिये में कोमल करुनारस वखानिये । आनन्द में हास्य रुंड मुंड में बिराजे रुद्र, बीभछ तहां जहां गिलान मन आनिये ॥ चिन्ता में भयानक अथाहता में अदभुत, माया की अरुचि तामें शान्त रस मानिये । येई नव रस भव रूप येई भाव रूप, इन्ह को विलेक्षण सु दृष्टि जग जानिये ॥ ८१ ॥

छप्पय छंद—गुन बिचार सिंगार, वीर उद्दिम उदार रुष । करुना सम रसरीति, हासहिरदे उछाह सुख ॥ अष्ट करम दल मलन, रुद्र बरते तिहि थानक । तन विलेछ बीभक्ष, दुंद दुखदसा भयानक । अद्भुत अनंत वल चिंतवत, शांत सहज बैराग धुव ॥ नवरस विलास परगास तव, जब सुवोध घट प्रगट हुव ॥ ८२ ॥

चौपाई ।

जब सुबोध घटमें परकासे । तव रस विरस विषमता नासे ॥
नवरस लखे एकरस मांही । तातेंबिरसभाव मिटि जांही८३॥

दोहा—सबरस गर्भित मूलरस, नाटक नाम गरंथ ।
जाके सुनत प्रवान जिय, समुझे पंथ कुपंथ ॥ ८४ ॥

चौपाई ।

बरते ग्रंथ जगत हितकाजा । प्रगटे अमृतचंद मुनिराज ॥
तब तिन्हग्रंथ जानिअति नीका।रची बनाइसंस्कृतटीका॥८५॥

दोहा—सर्व विशुद्धि द्वारलों, आए करत बखान ।
तब आचारज भक्तिसों, करे ग्रंथ गुन गान ॥ ८६ ॥

चौपाई ।

अदभुत ग्रंथ अध्यातम बानी। समुझे कोऊ बिरलाज्ञानी ॥
यामें स्यादवाद अधिकारा । ताकोजो कीजेविसतारा॥८७॥
तो गरंथ अति शोंभा पावे । वह मंदिर यहकलसकहावे ॥
तबचितअमृतबचनगढखोले। अमृतचंदआचारजबोले॥८८॥

दोहा—कुंदकुंद नाटकविषे, कह्यो दरब अधिकार ।
स्यादबादनें साधिमें, कहों अबस्था द्वार ॥ ८९ ॥
कहों मुकतिपदकीकथा, कहों मुकतिकोपंथ ।
जैसे घृत कारज जहां, तहाँ कारन दधिपंथ ॥ ९० ॥

अर्थ स्पष्ट । चौपाई ।

अमृतचन्द बोले मृदुबानी । स्यादवादकी सुनो कहानी ॥
कोऊ कहै जीव जगमांही । कोऊकहैजीवहैनांही ॥ ९१ ॥

दोहा—एक रूप कोऊ कहै, कोऊ अगनित अंग ।
छिन भंगुर कोऊ कहै, कोऊ कहै अभंग ॥ ९२ ॥

नयअनंत इहविधि कही, मिले न काहू कोइ ।
जो सब नय साधन करे, स्यादवादहै सोइ ॥ ९३ ॥
स्यादवाद अधिकार अब, कहों जैनकोमूल ।
जाके जाने जगतजन, लहै जगत जलकूल ॥ ९४ ॥

सवैया इकतीसा—शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीन के पराधीन, जीव एक है किधौ अनेक मानि लीजिये । जीव हे सदीव किधौ नाहि है जगतमांहि, जीव अवि नस्वर के नस्वर कही कीजिये ॥ सतगुरु कहे जीवहै सदीव निजाधीन, एक अविनस्वर दरव दृष्टि दीजिये । जीव पराधीन छिन भंगुर अनेक रूप, नांहि तहां जहां परजे प्रवान कीजिए॥९५॥

सवैया इकतीसा—दर्व खेत्र काल भाव चारो भेद वस्तुही में, अपने चतुष्क बस्तु अस्तिरूप मानियें । परके चतुष्क वस्तु नासति नियत अंग, ताको भेद दर्व परजाय मध्य जानिये ॥ दरवतो वस्तु खेत्र सत्ता भूमिकाल चाल, सुभाव सहज मूल सकति वखानिये । याही भांती परविकलप बुद्धि कलपना, विवहार दृष्टि अंशभेद परवानिये ॥ ९६ ॥

दोहा—है नाही नाही सु है, है है नाई नाहि ।
यह सरवंगी नयधनी, सबमाने सब मांहि ॥ ९७ ॥

सवैया इकतीसा—ज्ञानको कारन ज्ञेय आतमा त्रिलोक मेय, ज्ञेयसों अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छाही है । जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व दर्व में विनाज्ञेय छेत्र ज्ञान जीव वस्तु नांही है ॥ देह नसे जीव नसें देह उपजत लसें, आतमा अचेतन है सत्ता अंसमांही है । जीव छिन भंगुर अज्ञायक सरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकंत अवस्था मूढ पाही है ॥ ९८ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ मूढ कहै जैसे प्रथम समारि भीति, पीछे ताके उपर सु चित्र आछो लेखिये । तैसे मूल कारन प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञान रूप कारज विशेषिये॥ ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसोई सुभाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिये । कारन कारज दोउ एकहींमें निहचे पें, तेरो मत साचो विवहार दृष्टि देखिये ॥ ९९ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समुझै त्रिलोक पिंड आतम दरव है । याहितें सुछंद भयो डोले मुख हू न बोले, कहे याजगतमें हमारोई खरब है । तासों ज्ञाता कहे जीव जगतसों भिन्न पै, जगत को विकासी तोहि याहीते गरवहै । जोवस्तुसो वस्तु पररूप सों निराली सदा, निहचे प्रमान स्यादवादमें सरवहै ॥ ५०० ॥

सवैया इकतीसा—कोउ पशु ज्ञानकी अनन्त विचित्राई देखे, ज्ञेय को आकार नाना रूप विसतर्‍यो है । ताहीकों विचारी कहे ज्ञान की अनेक सत्ता, गहिके एकन्त पक्ष लोकनि सों लर्‍यो है ॥ ताको भ्रम भंजबे कों ज्ञानवन्त कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस भर्‍यो है । ज्ञायक सु भाई परजाई सों अनेक भयो, जद्यपि तथापि एकतासों नहिं टर्‍यो है ॥ १ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ कुधी कहे ज्ञानमांहि ज्ञेय को अकार, प्रति भासि रह्यो है कलंक ताहि धोइए । जब ध्यान जल सों पखारि के धवल कीजे, सब निराकार शुद्ध ज्ञान मई होइए । तासों स्याद्वादी कहे ज्ञान को सुभाव यहे, ज्ञेय को आकार वस्तु नांहि कहा खोइए । जैसे

नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीसे जदपि तथापि आरसी बिमल जोइए ॥ २ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ अज्ञ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम, जोलों विद्यमान तोलों ज्ञान परगट है। ज्ञेय के विनाश होत ज्ञानको विनास होइ, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यात की अलट है॥ तासों समकित वंत कहे अनुभो कहान, परजे प्रवान ज्ञान नानाकार नट है। निरविकलप अविनस्वर दरब रूप, ज्ञान ज्ञेय वस्तु सों अव्यापक अघट है॥ ३ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ मन्द कहे धर्म अधर्म आकास काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जग में। जाने न मरम निज मानें आपा पर वस्तु, बंधे दिढ़ करम धरम खोवे डग में॥ समकिती जीव सुद्ध अनुभो अभ्यासें तातें, परको ममत्व त्याग करे पगपग में। अपने सुभावमें मगनरहे आठों जाम, धारावाही पंथिक करावे मोख मगमें॥ ४ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ सठ कहे जेतो ज्ञेयरूप परवान, तेतो ज्ञान तातें कहुं अधिक न और है। तिहूं कालपर क्षेत्र व्यापी परनयो माने, आपा न पिछाने ऐसी मिथ्या दृग दौर है॥ जैन मती कहे जीव सत्ता परवान ज्ञान, ज्ञेयसों अव्यापक जगत सिर मोर है। ज्ञानकी प्रभामें प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय, जदपि तथापि थित न्यारी न्यारी ठौर है॥ ५ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ शून्यबादी कहे ज्ञेयके विनास होत, ज्ञानको विनाश होइ कहो कैसे जीजियें। तातें जीवितव्यता की थिरता निमित्त सब, ज्ञेयाकार परिनमनिको नास की-

जियें ॥ सत्यबादी कहे भैया हूजें नाही खेद खिन, ज्ञेयसों विरचि ज्ञान भिन्न मानि लीजियें । ज्ञानकी शकति साधि अनुभौ दशा अराधि, करमकों त्यागिके परम रस पीजियें ॥६॥

सवैया इकतीसा—कोउ क्रूरकहे कायाजीव दोउ एक पिंड, जवदेह नसैगी तवहीं जीव मरेगो । छायाको सो छल किधों मायाको सो परपंच, कायामे समाइ फिरि कायाकों न धरेगो ॥ सुधी कहे देहसों अव्यापक सदीव जीव, समोपाइ परको मम-त्व परिहरेगो । अपने सुभाउ आइ धारना धरामे धाइ, आ-पुमें मगन व्हेके आपा शुद्ध करेगो ॥ ७ ॥

दोहा—ज्यों तन कंचुकि त्यागसों, विनसे नांहि भुयंग ।
त्यों शरीरके नासतें, अलख अखंडित अंग ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ दुरवुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उपज्यो हे अब आइके । जोलों देह तोलों देहधारी फिर देह नसे, रहेगो अलख ज्योति ज्योतिमें समाइके ॥ सदवुद्धी कहे जीव अनादिको देह धारी, जब ज्ञान होइगो कवहीं काल पाइके । तवही सो पर तजि अपनो सरूप भजि, पावैगो परमपद करम नसाइके ॥ ९ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ पक्षपाती जीव कहे ज्ञेयके आकार, परिनयो ज्ञान तातें चेतना असतहे । ज्ञेयके नसत चेतनाको नास ता कारन, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥ पंडि-त कहत ज्ञान सहज अखंडितहे, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों बिरतहै । चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रवान जीवतत है ॥ १० ॥

सवैया इकतीसा—कोउ महा मूरख कहत एक पिंडमांहि,

जहांलों अचित चित अंग लहलहे है । जोगरूप भोगरूप नानाकारज्ञेयरूप, जेतेभेद करमके तेतेजीव कहेहे ॥ मतिमान कहे एक पिंडमांहि एक जीव, ताहीके अनंत भाव अंस फैलि रहेहै । पुग्गलसों भिन्नकर्म जोगसों अखिन्नसदा, उपजे विनसे थिरता सुभाव गहे है ॥ ११ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ एक छिनवादी कहे एक पिंडमांहि, एक जीव उपजत एक विनसतुहै । जाही समै अंतर नवीन उतपति हुइ, ताही समै प्रथम पुरातन वसतुहै ॥ सरबंग वादी कहे जैसे जलवस्तु एक, सोंइ जलविविध तरंगनि लसतुहै । तैसें एक आतम दरव गुनपरजेसों, अनेक भयो पैं एक रूप दरसतु है ॥ १२ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ वालवुद्धि कहे ज्ञायकसकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये । ज्ञायक सकति काल पाई मिटि जाई जब, तव अविरोध बोध विमल वखानिये ॥ परम प्रवीन कहे ऐसी न तो बनें बाही, जैसे विनुं परगास सूरजन मानिये । तैसें विनु ज्ञायक सकति न कहावे ज्ञान, यहतो न पक्ष परतच्च परवानिये ॥ १३ ॥

दोहा—इहविधि आतम ज्ञानहित, स्यादवाद परवान ।
जाके बचन विचार सों, मूरख होइसुजान ॥ १४ ॥
स्यादवाद आतम सदा, ताकारन बलवान ।
शिव साधक वाधा रहित, अखेअखंडित आन ॥ १५ ॥
स्यादवाद अधिकारयह, कह्यो अलपविसतार ।
अमृत चंद मुनिवर कहे, साधक साधि दुवार ॥ १६ ॥

इति श्री नाटक समयसार विषै ग्यारवां स्याद्वाद द्वार समाप्तः ।

१२ अध्याय साध्य साधक द्वार

सवैया इकतीसा—जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अजोगी अमूरतिक परदेशवंतहै । उतपतिरूप नाश रूप अविचल रूप, रतनत्रयादि गुण भेदसों अनंत है ॥ सोई जीव दरब प्रवान सदा एकरूप, ऐसो शुद्ध निहचें सुभाउ बिरतंत है । स्यादवाद मांहि साधि पद अधिकार कह्यो,अब आगे कहिवेकों साधक सिधंत है ॥ १७ ॥

दोहा—साधि शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत ।
साधक अविरत आदि बुध, छीन मोह परजंत ॥ १८ ॥

सवैया इकतीसा—जाको अधो अपूरव अनवर्त्ति करनको, भयो लाभ भई गुरु वचनकी बोहनी । जाके अनंतानुबंध क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी ॥ सातों पराकिति खपी किंवा उपसमी जाके, जगी उरमांही समकित कला सोहनी । सोइ मोक्ष साधक कहायो ताके सरवंग,प्रगटी शगतिगुन थानक आरोहनी ॥१९॥

सोरठा—जाको मुगति समीप, भई भव स्थिति घट गई ।
ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन ॥ २० ॥

दोहा—ज्यों वरषे बरषा समे, मेघ अखंडित धार ।
त्यों सदगुरु बानी खिरें, जगत् जीव हितकार ॥ २१ ॥

सवैया तेईसा—चेतनजी तुमजागि विलोकहू, लाग रहे कहांमाया कि तांई । आय कहींसुं कहींतुम जाउगे,माया रहेगि जहां कि तहांई ॥ मायातुह्मारि न जाति न पाति न वंस कि वेल

न अंस कि झांई । दासि किए बिनु लातनि मारत, ऐसि अनीति न कीजे गुसांई ॥ २२ ॥

दोहा—माया छाया एक हैं, घटे बढ़े छिनमांहि ।
इन्हकी संगति जे लगे, तिनहिंकहूं सुखनांहि ॥ २३ ॥

सवैया तेईसा—लोगनिसों कछु नातों न तेरों, न तोसों कछू इह लोगकों नातो । ए तों रहे रमि स्वारथ के रस, तूं परमारथ के रस मातो ॥ ए तन सों तन में तन से जड़, चेतन तूं तनसों नित हांतो । होहि सुखी अपनो बल तोरिकें, रागविराग विरोधकों तांतों ॥ २४ ॥

सोरठा—जे दुरबुद्धी जीव, ते उतंग पदवी चहे ।
जे समरसीसदीव, तिन्हको कछू न चाहिये ॥ २५ ॥

सवैया इकतीसा—हांसीमें विषाद वसे विद्या में विवाद वसे, कायामें मरन गुरुवर्त्तन में हीनता । सुचि में गिलान बसे प्रापति में हानि बसे, जैमें हारि सुंदर दशा में छबि छीनता ॥ रोग बसे भोगमें संयोग में वियोग बसे, गुन में गरव बसे सेवा मांहि दीनता । और जगरीति जेती गर्वित असाता सेती, साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥२६॥

दोहा—जिहिउतंगचढ़िफिरिपतन, नहिंउतंगवहिकूप ।
जिहिसुखअंतरभयवसे, सो सुख है दुखरूप ॥ २७ ॥
जो विलसे सुख संपदा, गये ताहि दुख होइ ।
जोधरतीवहु त्रिणवती, जरे अगनिसों सोइ ॥ २८ ॥

इति गुरु उपदेश समाप्तः ।

सपदमांहि सतगुरुकहे, प्रगटरूप जिन धर्म ।
सुनत बिचक्षण सद्दहे, मूढ़ न जाने मर्म ॥ २९ ॥

सवैया तेईसा—जैसे काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरको । दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू और पंथिककों पूछे पंथपुरको ॥ सोतो कहे तुह्मारो नगर हे तुमारे ढिग, मारग दिखावे समुझावे खोज पुरको । एते पर सुष्ट पहिचाने पें न माने दुष्ट, हिरदे प्रवान तैसे उपदेश गुरुको ॥ ३० ॥

सवैया इकतीसा—जैसे काहू जंगलमें पावसको समो पाई अपने सुभाई महा मेघ वरषतु है । आमल कषाय कटु तीछन मधुर षार, तैसो रस वाढें जहां जैसो दरषतु है ॥ तैसो ज्ञान वंत नर ज्ञानको बखान करे, रसको उमाहो है न काहू परष-तु है । वहे धुनि सुनि कोउ गहे कोउ रहे सोई, काहू कों विषाद होई कोउ हरषतु है ॥ ३१ ॥

दोहा—गुरु उपदेश कहा करे, दुराराधि संसार ।
वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥ ३२ ॥
डूंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रोचक शुद्ध ।
उंघा दुरबुद्धी विकल, घूंघा घोर अबुद्ध ॥ ३३ ॥
जाकी परम दशा विषे, करम कलंक न होइ ।
डूंघा अगम अगाध पद, वचन अगोचर सोइ ॥ ३४ ॥
जे उदास व्है जगतसों, गहे परम रस पेम ।
सो चूंघा गुरुके बचन, चूंघे बालक जेम ॥ ३५ ॥
जो सुबचन रुचिसों सुने, हिए दुष्टता नांहि ।
परमारथ समुझे नही, सो सूंघा जगमांहि ॥ ३६ ॥
जाकों विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट ।
सो उंघा विषई विकल, दुष्ट रिष्ट पापिष्ट ॥ ३७ ॥

जाकेश्रवन बचन नही,नहिमन सुरति विराम ।
जडता सो जडवत भयो, घूंघा ताको नाम ॥ ३८ ॥

चौपाई ।

डूंघा सिद्ध कहे सब कोऊ। सुंघा उंघा मूरख दोऊ ।
घूंघा घोर बिकल संसारी । चूंघा जीव मोख अधिकारी ॥३९॥

दोहा—चूंघा साधक मोक्षको, करे दोष दुख नास ।
लहे पोष संतोष सों, बरनो लच्छन तास ॥ ४० ॥
कृपा प्रसम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग ।
ए लच्छन जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग ॥ ४१ ॥

चौपाई ।

जूवा आमिष मदिरा दारी। आषेटक चोरी पर नारी ॥
एई सात व्यसन दुखदाई । दुरितमूलदुर्गतिके भाई ॥ ४२ ॥

दोहा—दर्वित ए सातों व्यसन, दुराचार दुखधाम ।
भावित अंतर कलपना, मृषा मोह परिनाम ॥ ४३ ॥

सवैया इकतीसा—अशुभमें हारि शुभ जीति यहे दूतकर्म देहकी मगनताई यहै मांस भखिबो । मोहकी गहलसों अजाने यहे सुरापान, कुमतिकीरीति गनिकाको रस चखिबो ॥ निरदे व्हे प्राण घात करिवो यहे सिकार, परनारी संग पर बुद्धिको बरखिबो । प्यारसों पराई सोंज गहिबेकीचाह चोरी, येई सातोंव्यसन बिडारि ब्रह्म लखिबो ॥ ४४ ॥

दोहा—विसन भाव जामें नहीं, पौरुष अगम अपार ।
किये प्रकट घटसिंधुमथि, चौदहरतनउदार ॥ ४५ ॥

सवैया इकतीसा—लक्ष्मी, सुबुद्धि, अनुभूति, कौस्तुभमणि, वैराग कलपवृक्ष, संत सुवचन है । ऐरावत, उद्यिम

प्रतीति रंभा, उदैविष, कामधेनु, निर्झरा सुधाप्रमोद घनहै॥ ध्यान चाप प्रेम रीति मदिरा विवेक वैद्य शुद्धभाव चन्द्रमा तुरंगरूप मन है। चौदह रतन ये प्रकट होइ जहां तहां, ज्ञान के उदोत घट सिंन्धुको मथन है ॥ ४६ ॥

दोहा—किये अवस्थामें प्रकट, चौदह रतन रसाल ।
कछु त्यागे कछु संग्रहे, बिधि निषेधकीचाल ॥ ४७॥
रमा संष बिष धनु सुरा, वेद धेनु हय हेय ।
नति रंभा गज कल्पतरु, सुधा सोम आदेय ॥ ४८ ॥
इह विधिजो परभाव बिष, वमे रमे निजरूप ।
सो साधक शिवपंथको, चिदविवेक चिद्रूप ॥ ४९ ।

कवित्त छन्द—ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर, निरखे दरव सुगुन परजाइ । जिन्हके सहजरूप दिनदिन प्रति, स्यादवाद साधन अधिकाइ ॥ जे केवल प्रतीत मारग मुख, चिते चरन राखें ठहराइ । ते प्रवीन करि छिन्न मोह मल, अविचल होइ परमपद पाइ ॥ ५० ॥

सवैया इकतीसा—चाकसो फिरत जाकों संसार निकट आयो, पायो जिनि सम्यक मिथ्यात नाश करिके । निरदुंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिनि, कीनी मोख कारन अवस्था ध्यान धारिके ॥ सोई शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गारिके । मिथ्यामति आपनो सरूप न पिछाने तामें, डोले जग जालमें अनंत काल भरिके ॥ ५१ ॥

सवैया इकतीसा—जे जीव दरबरूप तथा परजायरूप, दोउ नै प्रवान वस्तु शुद्धता गहतहै । जे अशुद्धभावनिके त्यागी

भए सरवथा, बिषसों बिमुख व्है बिरागता चहत है ॥ जो ग्राहजभाव त्यागभाव दुहूं भावनिको, अनुभौ अभ्यासबिषे एकता कहत है । तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोख, मारगके साधक अबाधक महतहै ॥ ५२ ॥

दोहा—विनासि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोष ।
ता परनतिकौं बुध कहे, ज्ञान क्रियासों मोष ॥ ५३ ॥
जगी शुद्ध समकित कला, बगी मोखमग जोइ ।
वहे करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ ॥५४॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम ।
जैसे दीपक जो धरे, सो उजियारो धाम ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकारगयो, भयो परगास सुद्ध समकित भानको । जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी, जान्यो जिन मरम अबाची भगवानको ॥ जाको ज्ञान तेज बग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोष समरस सुधा पानको । ताही सु विचक्षन को संसार निकट आयो, पायो तिनि मारग सुगम निरवानको॥५६॥

सवैया इकतीसा—जाके हिरदेमें स्याद्वाद साधना करत, शुद्ध आतमाको अनुभौ प्रगट भयो है । जाकौ संकलप विकलपके विकार मिटि, सदा काल एकी भाव रस परिनयोहै ॥ जिनि बंध बिधि परिहार मोख अंगीकार, ऐसो सुविचार पच्छ सोउ छांडि दयो है ॥ जाकी ज्ञानमहिमा उदोत दिन दिन प्रति, सोइ भवसागर उलंघि पार गयो है ५७ ॥

सवैया इकतीसा—अस्तिरूप नासाति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहिये । दीसे एक नैकी प्र-

तिक्षनी अपर दूजी, नैकों नै दिखाइ वाद विवादमें रहिये ॥ थिरता न होइ विकलपकी तरंगनिमें, चंचलता बढ़े अनुभौ दशा न लहिये । तातें जीव अचल अबाधित अखंड एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये ॥ ५८ ॥

सवैया इकतीसा—जैसे एक पाको आंवफल ताके चारि अंस, रसजाली गुठली छीलक जब मानिये । यों तो न बनें पें ऐसें बने जैसें दहेफल, रूपरस गंध फास अखंड प्रवानिये ॥ तैसें एक जीवकों दरब क्षेत्र कालभाव, अंस भेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये। दर्ब रूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप,चारों-रूप अलख अखंड सत्ता मानिये ॥ ५९ ॥

सवैया इकतीसा—कोउ ज्ञानवान कहे ज्ञान तो हमारोरूप, ज्ञेयषटदर्ब सो हमारो रूप नांहीं है । एकनै प्रवान ऐसें दूजी अब कहों जैसें, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही है ॥ तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप सकति अ-नंत मुझ पाही है। ता कारण वचनके भेद भेद कहों कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता माहीं है ॥ ६० ॥

चौपाई ।

स्वपर प्रकाशक सकति हमारी। तातें वचन भेद भ्रमभारी ॥
ज्ञेयदसा द्विविधा परगासी। निजरूपा पररूपा भासी ॥ ६१ ॥

दोहा—निजरूपा आतम सकति, पररूपा परवस्त ।
जिनि लखि लीनो पेच यह, तिनि लिखलियो समस्त ॥ ६२ ॥

सवैया इकतीसा—करम अवस्थामें अशुद्धसो विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंगहै । उभै नै प्रवान समका ल सुद्धासुद्धरूप, ऐसो परजाइ धारी जीव नाना रंग है ॥

एकही समेमें त्रिधारूप पें तथापि याकी, अखंडित चेतना सकति सरवंगहै। यहे स्याद्वाद याको भेद स्याद्वादी जानै, मूरख न माने जाको हियो दृग भंगहै ॥ ६३ ॥

सवैया इकतीसा—निहचे दरव दृष्टि दीजें तब एकरूप, गुनपरनति भेद भावसों बहुत है। असंख प्रदेश संयुगत सत्ता परवान, ज्ञानकी प्रभासों लोकालोक मानजुत है ॥ परजे तरंगनिके अंग छिन भंगुरहै, चेतना सकति सो अखंडित अचुत है। सोहे जीव जगति विनायक जगत सार, जाकी मौज महिमा अपार अदभुत है ॥ ६४ ॥

सवैया इकतीसा—विभाव सकति परिनतिसों विकल दीसें, सुद्ध चेतना विचारतें सहज संतहै। करम संयोग सों कहावे गतिको निवासी, निहचें सरूप सदा मुकत महंतहै ॥ ज्ञायक सुभाउ धरे लोकालोक परगासी, सत्ता परवान सत्ता परगासवंतहै। सोहे जीव जानत जहां न कौतुको महान, जाके कीरति कहान अनादि अनंत है ॥ ६५ ॥

सवैया इकतीसा—पंच परकार ज्ञानावरनको नास करि, प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है। ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धारि, अनेक भई पें एकतामें रसपगीहै॥ याही भांति रहेगी अनंत कालपरजंत, अनंत शकति फोरिअनंतसों लगीहै। नरदेह देवलमें केवलमें रूप सुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सिखा समाधि जगी है ॥ ६६ ॥

सवैया इकतीसा—अक्षर अरथ में मगन रहै सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा काम गविकी। अमल अबाधित अलख गुन गावना है, पावना परमशुद्ध भावनाहै भविकी॥

मिथ्यात तिमर अपहार वर्द्धमान धारा, जैसी उभै जाम लौं
किरन दीपे रविकी । ऐसीहैं अमृत चंदकला त्रिधारूप धरे,
अनुभौ दशा गरंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ६७ ॥

दोहा—नाम साधि साधक कह्यो, द्वार द्वादसमठीक ।
समयसार नाटक सकल पूरन भयो सटीक ॥ ६८ ॥

इतिश्रीनाटकसमयसारविषैंसाध्यसाधकनामाबारमांद्वारसंपूर्णम् ।

दोहा—अब कविजन पूरनदशा, कहै आपसों आप ।
सहज हरष मन में धरै, करै न पश्चाताप ॥ ६९ ॥

सवैया इकतीसा—जो मैं आप छांड़ि दीनो पररूप गहि
लीनो, कीनो न बसेरो तहां जहां मेरो थल है । भोगनि को
भोगी राहि करमको कर्ता भयो, हिरदे हमारे राग दोष मोह
मल है । ऐसी विपरीति चाल भई जो अतीति काल, सो तो
मेरी क्रिया की ममत्वताको फल है । ज्ञान दृष्टि भासी भयो
क्रिया सों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रा में सुपन को सो
छल है ॥ ७० ॥

दोहा—अमृतचन्द मुनिराज कृत, पूरन भयो गरंथ ।
समयसार नाटक प्रकट पंचमगतिको पंथ ॥ ७१ ॥

इतिश्रीसमयसारनाटकग्रंथअमृतचंदआचार्यकृतसंपूर्णम् ।

दोहा—जाकी भगति प्रभावसो, कीनोग्रंथ निबाहि ।
जिनप्रतिमा जिनसारखी, नमेबनारसिताहि ॥ ७२ ॥

सवैया इकतीसा—जाके मुख दरस सों भगत के नैननि

कौं, थिरता की बानी चढ़ी चंचलता बिनसी । मुद्रा देखे केवलीकी मुद्रा यादि आवे जहां, जाके आगें इंद्रकी विभूति दिसे तिनसी ॥ जाको जस जंपत प्रकास जगे हिरदेमें, सोई सुद्ध मती होइ हुती जो मलिनसी । कहत बनारसी सु महिमा प्रकट जाकी, सोहे जिन की सबी हे विद्यमान जिनसी ॥ ७३ ॥

सवैया इकतीसा—जाके उर अंतर सुदृष्टिकी लहरिलसी, बिनसी मिथ्यात मोह निद्राकी समारषी । सैली जिन सासनकी फैली जाके घट भयो, गरबको त्यागी षट दरवको पारषी ॥ आगम के अच्चर परे है जाके श्रवणमें, हिरदे भंडार में समानी बानी आरषी । कहत बनारसी अलप भवस्थित जाकी, सोइ जिन प्रतिमा प्रवाने जिन सारषी ॥ ७४ ॥

चौपाई ।

जिन प्रतिमाजन दोष निकंदे । सीस नमाइ बनारसि बंदे
फिरिमनमांहि विचारे ऐसा । नाटकग्रंथ परमपद जैसा॥७५॥
परम तत्व परचे इस मांही । गुन थानककी रचना नांही॥
यामें गुनथानक रस आवे । तो गरंथ अतिशोभापावे॥७६॥

दोहा—यह विचारि संच्चेपसों, गुनथानक रस योज ।
बरनन करे बनारसी, कारन शिव पथ खोज ॥ ७७ ॥
नियत एक विवहारसों, जीव चतुर्दश भेद ।
रंग जोग बहुबिधि भयो, ज्यूंपट सहजसुपेद ॥ ७८ ॥

सवैया इकतीसा—प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र चतुरथो अव्रत पंचमो व्रतरंच है । छठो परमत्त सातमो अपरमतनाम, आठमो अपूरव करनसुख संचहै ॥ नौमो

अनिवर्त्त भाव दशमो सूक्ष्मलोभ, एकादशमो सु उपसंत मोह वंचहै । द्वादशमो क्षीन मोह तेरहों सजोगी जिन, चौदहों अजोगी जाकी थिति अंक पंच है ॥ ७९ ॥

दोहा—बरने सबगुन थानके, नाम चतुर्दश सार ।
अब बरनों मिथ्यातके, भेद पंच परकार ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा—प्रथम एकंत नाम मिथ्यात अभिग्रहीक, दूजो विपरित अभिनिवेसिक गोत है । तीजो विनै मिथ्यात अनाभिग्रह नाम जाको, चौथो संसे जहां चित भोरकोसो पोत है ॥ पंचमो अज्ञान अनाभोगिक गहलरूप, जाके उदे चेतन अचेतनसो होत है । ए पांचो मिथ्यात भ्रमावे जीवको जगतमें, इन्हके विनास समकितको उदोत है ॥ ८१ ॥

दोहा—जो इकंत नय पक्ष गहि, छके करावे दक्ष ।
सो इकंत वादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष ॥ ८२ ॥
ग्रंथ उकति पथ उक्षपे, थापे कुमत सुकीय ।
सुजस हेत गुरुता ग्रहे, सो विपरीती जीय ॥ ८३ ॥
देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, गिनें समान जु कोइ ।
नमेंभगतियां सबनिको, विनयमिथ्यातीसोइ ॥ ८४ ॥
जो नाना विकलप गहे, रहे हिए हैरान ।
थिर व्हे तत्व न सद्दहे, सो जिय संसयवान ॥ ८५ ॥
जाको तन दुखदहलसों, सुरतिहोति नहिंरंच ।
गहलरूप वरते सदा, सो अज्ञान तिरयंच ॥ ८६ ॥
पंचभेद मिथ्यातके, कहे जिनागम जोइ ।
सादिअनादि सरूपअब, कहों अवस्थादोइ ॥ ८७ ॥

जो मिथ्या दल उपसमे, ग्रंथ भेद बुधि होइ ।
फिरि आवे मिथ्यातमें, सादि मिथ्याती सोइ ॥ ८८ ॥
जिनि गरंथि भेदी नहीं, ममता मगन सदीव ।
सोअनादि मिथ्यामती, बिकल बहिर्मुखजीव ॥ ८९ ॥
कह्योप्रथमगुण थानयह, मिथ्यामतअभिधान।
अलप रूप अबबरनवुं, सासादन गुन थान ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसा—जैसें कोउ क्षुधित पुरुष खाइ खीर खांड, वोन करे पीछे के लगार स्वाद पावे है । तैसे चाढ़ि चौथे पांचएके छडे गुनथान, काहु उपसमीको कषाइ उदे आवे है ॥ ताहि समे तहां गिरें परधान दशा त्यागी, मिथ्यात अवस्थाकों अधोमुख व्है धावे है । वीच एक समे वा छ आवली प्रमान रहै, सोइ सासादन गुनथानक कहावे है॥ ९१ ॥

दोहा—सासादन गुन थान यह, भयो समापत बीय ।
मिश्र नाम गुन थानअब, बरनन करों त्रितीय ॥ ९२ ॥

सवैया इकतीसा—उपसमी समकिती केतो सादि मिथ्यामती, दुहूनिको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे है । अनंतानु बंधी चोकरीको उदे नांही जामे, मिथ्यात समे प्रकृति मिथ्यात न रहेहै ॥ जहां सद्दहन सत्यासत्यरूप समकाल, ज्ञान भाव मिथ्याभाव मिश्र धारा वहेहै । जाकी थिति अंतर मुहूरत वा एक समे, ऐसो मिश्र गुन थान आचारज कहेहै ॥९३॥

दोहा—मिश्र दशा पूरन भई, कही यथा मति भाषि ।
अथ चतुर्थगुनथानविधि, कहोंजिनागम साषि ॥ ९४ ॥

सवैया इकतीसा—केई जीव समकितपाय अर्ध पुद्गल, परावर्त्त काल तांई चोखे होइ चित्त के । कोई एक अंतर

मुहूरतमें ग्रंथि भेदि, मारग उलंघि सुखवेद मोख वितके॥ तातें अंतर मुहूरतसों अर्द्ध पुद्गललों, जेते समें होही तेते भेद समकितके। जाही समे जाको जब समकित होई सोई, तबहीसों गुन गहे दोष दहे इतके॥ ९५॥

दोहा—अथ अपूर्व अनवर्त्ति त्रिक, करन करे जोकोइ।
मिथ्या ग्रंथि विदार गुन, प्रगटे समकित सोइ॥ ९६॥
समकित उतपति चिन्हगुन, भूषनदोषविनास।
अतीचार जुतअष्ट विधि, बरनों बिवरन तास॥ ९७॥

चौपाई।

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी। दिनदिन रीतिगहे समताकी॥
छिन छिन करेसत्यको साको। समकितनांउकहावेताको९८॥

दोहा—केतो सहज सुभाउको, उपदेशे गुरु कोइ।
चिहुँ गतिसेंती जीवकों, सम्यक् दरशन होइ॥ ९९॥
आपा पर परचे विषे, उपजे नहिं संदेह।
सहज प्रपंचरहित दशा, समकित लक्षण एह॥ १००॥
करुना वछल सुजनता, आतमनिंदा पाठ।
समता भगति विरागता, धरमराग गुनआठ॥ १॥
चित प्रभावना भावजुत, हेय उपादयवानि।
धीरज हरष प्रवीनता, भूषन पंच वखानि॥ २॥
अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष।
तीन मूढता संजुगत, दोष पचीसी एष॥ ३॥
जाति लाभकुल रूपतप, बलविद्या अधिकार।
इन्हकोगरवजु कीजिये, यह मद अष्टप्रकार॥ ४॥

चौपाई ।

आसंका अस्थिरता बांछा । ममता दृष्टि दशा दुरगंछा ।
बत्सल रहित दोष परभाषे । चित्तप्रभावनामांहि नराषे॥ ५ ॥

दोहा—कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म ।
इनकी करे सराहना, यह षडायतन कर्म ॥ ६ ॥
देव मूढ़ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष ।
आठ आठ षटतीनि मिलि,एपचीससवदोष॥ ७ ॥
ज्ञान गर्व मतिमंदता, निठुर वचन उदगार ।
रुद्रभाव आलस दसा, नास पंच परकार ॥ ८ ॥
लोग हास भय भोगरुचि,अग्रसोच थितचेव ।
मिथ्या आगमकी भगति,मृषा दरसनी सेव॥ ९ ॥

चौपाई ।

अतीचार ए पंच प्रकारा । समलकरहि समकितकी धारा ॥
दूषनभूषनगतिअनुसरनी । दसाआठसमकितकी बरनी॥१०॥

दोहा—प्रकृति सात अब मोहकी,कहों जिनागम जोइ ।
जिन्हको उदै निवारिके, सम्यक दरशन होइ॥ ११ ॥

सवैया इकतीसा—चारित मोहकी चारि मिथ्यातकी तीनि तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी । बीजी महामान रस भीजी माया भई तीजी, चौथी महालोभ दसा परिगह पोहनी ॥ पांचइ मिथ्यातमति छठी मिश्र परनति, सातई समै प्रकृति समकित मोहनी । एई षट विंग बनितासी एक कुतियासी, सातो मोहप्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ १२ ॥

छप्पय छन्द—सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंडित । सातप्रकृति छय करन, हार छायकी अखंडित ॥ सात

मांहि कछु षिपहि, कछुक उपसम करि रक्खे। सो छय उपसमवंत, मिश्र समकित रस चक्खे। षट प्रकृति उपशमइ वा षिपइ, अथवा छय उपशम करे। सातई प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरे॥ १३॥

दोहा—छय उपसम बरते त्रिविध, वेदक चार प्रकार।
छायक उपशम जुगलयुत, नौधा समकित धार॥ १४॥
चारि षिपहि त्रय उपसमहि, पण षय उपसम दोइ।
षै षट उपसम एक यों, षय उपसम त्रिक होइ॥ १५॥
जहां चारि प्रकरती षिपहिं, द्वै उपसम इक वेद।
षय उपसम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद॥ १६॥
पंच षिपे इक उपसमैं, इक वेदे जिहि ठौर।
सो षय उपसम वेदकी, दशा दुतिय यह और॥ १७॥
षय षट वेदे एक जो, ष्यायक वेदक सोइ।
षट उपसम इक प्रकृति विद, उपसम वेदक होइ॥ १८॥
खायक उपसमकी दशा, पूरव षट पद मांहि।
कही प्रगट अब पुनरुकति, कारन बरनी नांहि॥ १९॥
षय उपसम वेदक षिपक, उपसम समकित चारि।
तीन चारि इक इक मिलत, सब नव भेद विचारि॥ २०॥

सोरठा—अव निहचे विवहार, अरु सामान्य विशेष विधि।
कहों चारि परकार, रचना समकित भूमिकी॥ २१॥

सवैया इकतीसा—मिथ्या मति गांठि भेद जगी निरमल ज्योति, जोगसों अतीत सोतो निहचे प्रवानिये, वहे दुन्द दसासों कहावे जोग मुद्रा धरे, मति श्रुति ज्ञान भेद विवहार मानिये॥ चेतना चिहन पहिचान आपपर वेदे, पौरुष

अलप ताते समान बखानिये । करे भेदाभेदको विचार विसताररूप, हेय गेय उपादेयसों विशेष जानिये ॥ २२ ॥

सोरठा—थिति सागरते तीस, अन्तरमुहुरत एकवा।

अविरतिसमकिति रीस,यहचतुर्थ गुनथानइति ॥२३॥

दोहा—अब बरनो इकवीसगुन, अरु बावीसअभक्ष्य ।

जिन्हके संग्रह त्यागसों, सोहे श्रावक पथ्य ॥ २४ ॥

सवैया इकतीसा—लज्जावन्त दयावन्त प्रसन्त प्रतीतवन्त, परदोषको ढकैया पर उपकारी है । सोम दृष्टि गुन ग्राही गरिष्ट सबको इष्ट, सिष्ट पक्षी मिष्टवादी दरिग विचारी है ॥ विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, नदीन न अभिमानी मध्य विवहारी है । सहजै विनीत पाप क्रिया सों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकबीस गुनधारी है॥ २५॥

कवित्त छन्द—ओरा घोरवरा निसभोजन, बहु बीजा बैंगन सन्धान । पीपर वर उँबरि कठूँवरी, पाकर जो फल होइ अजान ॥ कन्दमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरापान । फल आति तुच्छ तुसार चलित रस, जिनमत ए बावीस अखान ॥ २६ ॥

दोहा—अव पंचम गुनथानकी, रचना बरनो अल्प ।

जामें एकादश दशा, प्रातिमा नाम विकल्प ॥ २७ ॥

सवैया इकतीसा—दंसन विशुद्धकारी बारह विरतधारी, सामायकचारी पर्व पोसह विधि वहे । सचित्तको परिहारी दिवा अपरस नारी, आठोजाम ब्रह्मचारी निरारम्भी व्हैरहे॥ पाप परिग्रह छंडे पापकी न शिक्षा मंडे, कोउ याके निमित्त

करे सो वस्त न गहे । एते देस ब्रतके धरैया समकिती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिन्हे भगवन्तजी कहे ॥ २८ ॥

दोहा—संयम अंसजग्योजहां, भोग अरुचि परनाम ।
उदे प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥ २९ ॥
आठ मूलगुण संग्रहे, कुवसन क्रिया न कोइ ।
दर्शन गुन निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोइ ॥ ३० ॥
पंच अनुब्रत आदरे, तीन गुण ब्रत पाल ।
सिक्षा ब्रत च्यारो धरे, यह ब्रत प्रतिमा चाल ॥ ३१ ॥
दर्वभाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक ।
तजि ममता समता गहे, अंतर मुहुरत एक ॥ ३२ ॥

चौपाई ।

जो अरिमित्र समान विचारै । आरत रुद्र कुध्यान निवारै ।
संजमसहित भावना भावे । सो सामायकवंतकहावे ॥३३॥

दोहा—सामायक्क कीसी दसा, चार पहर लों होइ ।
अथवा आठपहररहे, पोसह प्रतिमा सोइ ॥ ३४ ॥
जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर ।
सो साचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥ ३५ ॥

चौपाई ।

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रतपाले । तिथिआयेनिशिद्यौस सँभाले॥
गहिनौवाडीकरै ब्रत रक्षा । सोपटप्रतिमासाधकअक्षा॥३६॥
जोनवआडिसहितविधि साधे । निशिदिन ब्रह्मचर्यआराधे ॥
सोसतमप्रतिमाधरज्ञाता । शीलशिरोमनिजगतविख्याता३७।

कवित्त छंद—तिय थल वास प्रेम रुचि निरखन, दे परीक्ष भाषन मधु बेन । पूरब भोग केलि रसचिन्तन, गुरु आहार

लेत चित चेन ॥ करिसुचितन शृंगार बनावत, तिय परयंक मध्य सुखसेन । मन मथ कथा उदर भरि भोजन, ए नव वाडि जान मतजेन ॥ ३८ ॥

दोहा—जो विवेक विधि आदरे, करे न पापा रंभ ।
सो अष्टम प्रतिमाधनी कुगति बिजे रनथंभ ॥ ३९ ॥

चौपाई ।

जो वसधा परिग्रहको त्यागी । सुख संतोष सहज बैरागी ॥
समरसचिंतितकिंचितग्राही । सोश्रावकनौप्रतिमावाही॥४०॥

दोहा—परकों पापा रंभ को, जो न देइ उपदेश ।
सोदशमीप्रतिमासहित, श्रावकविगतकलेश॥ ४१ ॥

चौपाई ।

जो सुछन्द बरतें तजि डेरा । मठ मंडप महिंकरे बसेरा ॥
उचित अहार उदंड बिहारी । सोएकादश प्रतिमाधारी॥४२॥

दोहा—एकादश प्रतिमादशा, कही देशव्रत मांहि ।
वही अनुक्रम मूलसों, गही सु छूटी नांहि ॥ ४३ ॥
षट प्रतिमा तांई जघन, मध्यम नव परजंत !
उत्तम दशमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ४४॥

चौपाई ।

एक कोटि पूरव गनिलीजें । तामें आठ बरष घट कीजे ॥
यहउत्कृष्टकाल थिति जाकी । अंत मुहूर्त्त जघन्य दसाकी४५॥

दोहा—सत्तरिलाख करोड़मिति, छप्पन सहस करोड़ि ।
एते बरष मिलाइ कारि, पूरब संख्या जोड़ि ॥ ४६ ॥
अंतर मुहुरत द्वै घडी, कछुक घाटि उतकृष्ट ।
एक समे एकाउली, अंत मुहूर्त्त कनिष्ट ॥ ४७ ॥

यह पंचम गुनथानकी, रचना कही विचित्र ।
अब छट्ठम गुनथानकी, दसा कहूं सुनु मित्र ॥ ४८ ॥
पंचप्रमाद दशा धरे, अट्ठाइस गुनवान ।
थविर कल्पजिन कल्पजुत, हेप्रमत्त गुनथान ॥ ४९ ॥
धरमराग विकथावचन, निद्राविषय कषाइ ।
पंच प्रमाद दसासहित, परमादी मुनि राइ ॥ ५० ॥

सवैया इकतीसा—पंच महाव्रत पाले पंच सुमती संभाले, पंच इंद्रि जीति भयो भोगी चित चैंनको । षट आवशक क्रिया दर्वित भावित साधे, प्रासुक धरामें एक आसन है सेंनको । मंजन न करे केसलुंचे तन वस्त्र सुंचे, त्यागे दंत वन पें सुगंध स्वास चैंनको ॥ ठाढो करषें अहारलघु भुंजी एकवार, अठाइस मूल गुनधारी जती जैनको ॥ ५१ ॥

दोहा—हिंसा मृषाअदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज ।
किंचित त्यागीअनुव्रती, सवित्यागी मुनिराज । ५२ ॥
चले निराखि भाषे उचित, भषे अदोष अहार ।
लेइ निराखि डारे निराखि, सुमति पंच परकार ॥ ५३ ॥
समता वंदन थुति करन, पडिकमनो सज्झाउ ।
काउसग्ग मुद्राधरन ए षडावसिक भाउ ॥ ५४ ॥

सवैया इकतीसा—थविर कलपी जिनकलपी दुविधिमुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहतहैं । दोउ अठाईस मूल गुनके धरैया दोउ, सरव तियागी व्है विरागता गहत हैं ॥ थाविर कलपिते जिन्हके शिष्य साषा होई, वैठके सभामें धर्म देसना कहतहैं । एकाकी सहज जिन कलपी तपस्वी घोर, उदेकी मरोरसुं परिसह सहतहैं ॥ ५५ ॥

सवैया इकतीसा—ग्रीषममें धूप थितसीतमें अंक पचीत, भूखधरेधीर प्यासे नीरन चहतु है। डंस मसकादिसों न डरें भूमि सैन करें, वध बंध बिथामें अडोल व्है रहतुहै ॥ चर्या दुखभरे तिन फाससों न थरहरें, मल दुरगंधकी गिलान न गहतुहै। रोगनकौ न करें इलाज एसो मुनिराज, वेदनीके उदे ए परीसह सहतुहै ॥ ५६ ॥

कुंडलिया—एते संकट मुनि लहे, चारित मोह उदोत। लज्जा संकुच दुख धरे, नगन दिगंवर होत॥ नगन दिगंबर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवे। त्रियसनमुख दृग रोकि, मान अपमान न बेवे॥ थिर व्है निर्भय रहे, सहे कुवचन जग जेते। भिक्षुक पद संग्रहे, लहे मुनि संकट एते ॥ ५७॥

दोहा—अल्प ज्ञान लघुता लखे, मति उतकरष विलोइ।
ज्ञानाबरन उदोत मुनि, सहे परीसह दोइ ॥५८॥
सहे अदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत।
रोके उमग अलाभ की, अंतराय के होत ॥ ५९॥

सवैया इकतीसा—एकादश वेदनीकी चारितमोहकीसात, ज्ञानाबरनी की दोइ एक अंतरायकी। दंसन मोहकी एक द्वाविंसति बाधा सब, केई मनसाकी केइ वाकी केई कायकी ॥ काहूकों अलप काहूसों वहोत उनी साता, एकहीं समेमें उदे आवे असहायकी। चर्याथित सय्यामांहि एक सीत उसनमांहि, एकदोइहोहि तीनि नांही समुदायकी॥६०॥

दोहा—नानाविध संकटदशा, सहिसाधे शिव पंथ।
थिविरकल्प जिनकल्पधर, दोऊसम निगरंथ॥ ६१ ॥
जो मुनि संगतिमें रहे, थविरकल्पिसोजानि।

एकाकीजाकी दशा, सो जिनकल्प बखानि ॥ ६२ ॥

चौपाई।

थविरकलपमुनिकछुकसरागी। जिनकलपी महांत विरागी॥
इति प्रमत्त गुनथानक धरनी। पूरनभईजथारथवरनी॥ ६३ ॥
अब बरनो सत्तम विसरामा। अप्रमत्त गुनथानक नामा ॥
जहां प्रमादक्रिया विधिनासे। धर्मध्यान थिरतापरगासे६४॥

दोहा—प्रथम करनचारित्रको, जासु अंत पद होइ।
जहां अहार बिहारनहि, अप्रमत्त है सोइ ॥ ६५ ॥

चौपाई।

अब वरनो अष्टम गुन थाना। नाम अपूरव करन बखाना ॥
कछुकमोहउपसमकरिराखे। अथवाकिंचितक्षयकरिनाखे॥६६॥
जो परिनाम भये नहिकबहीं। तिन्हको उदो देखिएजबहीं ॥
तब अष्टम गुनथानक होई। चारितकरन दूसरोसोई ॥६७॥
अब अनवर्त्तिकरन सुनु भाई। जहां भाव थिरताअधिकाई॥
पूरबभाव चलाचल जेते। सहजअडोलभयेसबतेते॥६८॥
जहांनभाव उलटिअधआवे। सो नवमो गुनथान कहावे ॥
चारित मोहजहां बहुछीजा। सोहेचरनकरनपदतीजा ॥६९॥
कहों दशमगुनथानदुसाखा। जहांसूक्ष्मशिवकीअभिलाषा ॥
सूक्षमलोभदशाजहांलहिये। सूक्षम संपरायसोकहिये ॥७०॥
अब उपसंत मोहगुन थाना। कहों तासु प्रभुता परवाना ॥
जहांमोहउपसमै न भासे। जथाख्यातचारितपरगासे॥७१॥

दोहा—जाहि फरसके जीवगिरि, परै करै गुन रद्द।
सो एकादसमी दसा, उपसमकी सरहद्द ॥ ७२ ॥

चौपाई।

केवल ज्ञान निकट जहँ आवे। तहां जीव सब मोहषि पावे॥
प्रगटे यथाख्यात परधाना। सो द्वादशम छीनगुनथाना॥७३॥

दोहा—षट सत्तम अष्टम नवम, दश एकादश बार।
अंतर मुहुरत एक वा, एकसमै थितधार॥ ७४॥
छीन मोह पूरन भयो, करि चूरन चित चाल।
अब सजोग गुनथानकी, बरनों दसा रसाल॥ ७५॥

सवैया इकतीसा—जाकी दुःखदाता घाती चोकरी विनसगई, चोकरी अघाती जरी जेवरी समान है। प्रगटभयो अनंत दंसन अनंत ज्ञान, बीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है॥ जामें आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति ऐसी, एक्यासी चोरासी वा पंचासी परवान है। सो है जिन केवली जगत वासी भगवान, ताकी जो अवस्था सो सजोगी गुन थानहै।७६।

सवैया इकतीसा—जो अडोल परजंक मुद्रा धारी सरवथा, अथवा सुकाउसग्ग मुद्रा थिरपालहै। खेत सपरस कर्म प्रकृतिके उदे आए, बिना डग भरे अंतरिक्ष जाकी चाल है॥ जाकी थित पूरव करोड़ि आठबर्ष घाट, अंतरमुहूरति जघन्य जग जालहै। सो है देव अठारह दूषन रहित ताकों, बनारसी कहे मेरी वंदना त्रिकाल है॥ ७७॥

कुंडलिया—दूषन अट्टारह रहित, सो केवलि संजोग। जनम मरण जाके नहीं, नाहिं निद्रा भय रोग॥ नाहिं निद्रा भय रोग, सोग विस्मय न मोहमति। जराखेद परस्वेद, नांहि मद वैर विषे रति॥ चिंता नांही सनेह, नाहिं जह प्यास न भूखन। थिर समाधि सुख सहित, रहित अट्टारह दूषन॥ ७८॥

कुंडलिया—बानी जहां निरक्षरी, सप्तधातुमलनांहि। केस रोमनखनहि वढ़े,परमउदारिक मांहि॥ परमउदारिक माहिं जांहि इंद्रिय विकार नसि, जथाख्यात चारित प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि । लोकालोक प्रकास,करन केवल रजधानी॥ सो तेरम गुनथान,जहां अतिशयमयबानी॥७९॥

दोहा—यह सजोग गुनथानकी, रचना कही अनूप ।
अब अयोग केवल कथा, कहों यथारथरूप ॥ ८० ॥

सवैया इकतीसा—जहां काहू जीबकों असाता उदे साता नांहि, काहूकों असाता नांहि साता उदे पाइये । मन वच कायसों अतीत भयो जहां जीव, जाको जस गीत जग जीत रूप गाइये ॥ जामें कर्म प्रकृतिकी सत्ता जागी जिनकीसी, अंतकाल द्वेसमे में सकल खिपाइये । जाकी थिति पंचलघु अक्षर प्रवानसोइ,चौदहो अयोगी गुन थाना ठहराइये॥८१॥

दोहा—चौदह गुनथानक दशा, जगवासी जियभूल ।
आश्रव संवर भाव द्वै, वंध मोक्ष के मूल ॥ ८२ ॥

चौपाई ।

आश्रव संवर परनतिजोलों। जगत निवासि चेतनातोलों ॥
आश्रव संवरविधि विवहारा। दोऊभवपथ शिवपथधारा॥८३॥
आश्रव रूप बंध उतपाता। संवर ज्ञान मोष पद दाता ॥
जा संवरसों आश्रव छीजे। ताकों नमस्कार अबकीजे॥८४॥

सवैया इकतीसा—जगतके प्रानी जीव व्है रह्यो गुमानी ऐसो, आश्रव असुर दुःख दानी महा भीम है । ताको परताप खंडिवेको परगट भयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है ॥ जाके परभाव आगे भागे परभाव सब, ना-

गर नवल सुख सागरकी सीम है ॥ संवर को रूपधरे साधे शिवराह ऐसो ज्ञानी पातसाह ताकों मेरी तस लीम है ॥ ८५ ॥

इतिश्रीसमयसार नाटक बालावबोधरूप समाप्त ।

चौपाई ।

भयो ग्रंथ संपूरन भाषा । वरनी गुनथानककी साषा ॥
बरनन और कहांलौं कहिये । जथासकतिकहिचुपव्हेरहियें॥
लिहए ऊरन ग्रंथ उदधिका । ज्योंज्योंकहियेत्योंत्योंअधिका॥
ताते नाटक अगम अपारा । अलपकवीसुरकीमतिधारा८७

दोहा—समयसारनाटक अकथ,कविकीमतिलघुहोइ ।
तातें कहत बनारसी, पूरन कथे न कोइ ॥८८॥

सवैया इकतीसा—जैसे कोउ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीते केही भांति चक्री कटक सों लरनो । जैसें कोउ परविन तारू भुज भारु नर, तरे कैसे स्वयंभूरमन सिंधु तरनो ॥ जैसें कोउ उद्दिमी उछाह मनमांहि धरे, करे कैसें कारज विधाता को सो करनो । तैसे तुच्छ मती मोरी तामें कबिकला थोरी, नाटक अपार मैं कहां लों याहि बरनो ॥ ८९ ॥

अथ जीव महिमा कथन ।

सवैया इकतीसा—जैसे वटवृक्ष एक तामें फल हैं अनेक फल फल बहू वीज बीज वीज वट है । वटमांहि फल फलमांहि वीज तामे बट कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है ॥ तैसे एक सत्ता में अनंत गुण प्रजा प्र-

जा में अनंत नृत्य नृत्य में अनंत ठट है । ठट में अनंत कला कला में अनंत रूप रूपमें अनंत सत्ता ऐसो जीव नट है ॥ ९० ॥

दोहा—ब्रह्म ज्ञान आकाशमें, उडे समति षग होइ ।
जथा सकति उद्दिमधरे, पार न पावे कोइ ॥ ९१ ॥

चौपाई ।

ब्रह्म ज्ञान नभ अंत न पावे । सुमति परोक्ष कहालों धावे ॥
जिहिविधिसमयसारजिनिकीनो॥तिन्हकेनामधरेअबतीनो९२

अथ कवि त्रयी कथन नाम ।

सवैया इकतीसा—कुंद कुंदाचारज प्रथम गाथा बद्ध करे, समैसार नाटक विचारी नाम दयो है । ताही के परंपरा अमृतचंद भये तिन्ह, संसकृत कलस समारि सुख लयो है ॥ प्रगट्यो बनारसी गृहस्थ सिरी माल अबकिये हैं क-वित्त हिए बोध बीज बयो है । शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव नाटक अनादियों अनादिहि को भयो है ॥ ९३ ॥

अथ कविव्यवस्था कथन ।

चौपाई ।

अथ कछु कहूं यथारथ बानी । सुकवि कुकविकीकथाकहानी॥
प्रथम सुकवी कहावे सोई । परमारथ रसबरने जोई॥९४॥
कलपित वात हिएनहिंआने । गुरु परंपरा रीति बखाने ॥
सत्यारथ सैली नहि छंडे । मृषाबादसों प्रीति न मंडे९५॥

दोहा—छंद शब्द अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रवान ।
जो इहि बिधि रचनारचे, सोहै सुकवि सुजान ॥ ९६ ॥

चौपाई ।

अब सुनु कुकवि कहूं है जैसा । अपराधीहिय अंध अनैसा ॥
मृषा भावरसबरने हितसों । नईउकतिनहिंउपजेचितसों९७
ष्याति लाभ पूजा मन आने । परमारथ पथ भेद न जाने ॥
बानी जीव एक करि बूझे । जाकोचितजड़ग्रंथिनसूझे९८
बानी लीन भयो जग डोले । बानी ममतात्यागि न बोले ॥
है अनादि बानी जगमाहीं । कुकविबातयहसमुझेनाहीं९९

अथ बानी ब्यवस्था कथन ।

सवैया इकतीसा—जैसे काहू देस में सलिल धार कारंज की, नदी सों निकसि फिरि नदी में समानी है । नगर में ठौर ठौर फैली रही चहूं ओर, जाके ढिग बहे सोई कहे मेरो पानी है । त्यों ही घट सदन सदन में अनादि ब्रह्म, बदन बदन में अनादिहीं की बाणी है । करम कलोल सों उसास की बयारि बाजे, तासो कहे मेरी धुनि ऐसो मूढ़ प्राणी है ॥७००॥

दोहा—ऐसे मूढ़ कुकवि कुधी, गहे मृषा पथ दौर ।
रहे मगन अभिमानमें, कहे और की और ॥ १ ॥
वस्तु सरूप लखे नहीं, बाहिज दृष्टि प्रमान ।
मृषा विलास विलोकके, करे मृषा गुनज्ञान ॥ २ ॥

अथ मृषा गुनज्ञान यथा ।

सवैया इकतीसा—मांस की गरंथि कुच कंचन कलस कहे, कहे मुख चंद जो सलेखमाको घरुहै । हाड़के दशन आहि हीरा मोती कहे ताहि, मांस के अधर ओठ कहे बिंब फरु है ॥ हाड़ दंभ भुजा कहे कौल नाल काम

जुधा, हाड़ही के थंभा जंघा कहे रंभा तरु है । योंही झूठी जुगति बनावै औ कहावै कवि एते पर कहे हम सारदाको वरु है ॥ ३ ॥

चौपाई ।

मिथ्या वंत कुकवि जे प्रानी । मिथ्यातिनकी भाषितबानी॥
मिथ्यावंत सुकवि जो होई । बचनप्रवानकरेसबकोई ॥४॥

दोहा—बचन प्रवान करे सुकवि, पुरुष हृदे परवान ।
दोऊ अंग प्रवान जो, सोहै सहज सुजान ॥ ५ ॥

अथ नाटक समयसार व्यवस्था कथन ।

चौपाई ।

अब यह बात कहौं है जैसें । नाटक भाषा भयो सु ऐसें॥
कुंद कुंद मुनि मूल उधरता । अमृतचंदटीकाकेकरता ॥६॥
समयसारनाटक सुख दानी । टीका सहितसंसकृतबानी ॥
पंडित पढ़ै दृढ़मती बूझै । अलपमतीकोंअरथनसूझै ।७।
पांड़े राजमल्ल जिन धर्मी । समयसार नाटक के मर्मी ॥
तिन्ह गरंथ की टीका कीनी । बालाबोधसुगमकरिदीनी।८।
इहि विधिबोध बचनिकाफैली । समौपाइ अध्यातम सैली ॥
प्रकटी जगतमांहि जिनबानी । घरघरनाटक कथा बखानी९
नगर आगरा मांहि विख्याता । कारन पाइ भये बहु ज्ञाता॥
पंच पुरुषअतिनिपुन प्रवीने । निशिदिनज्ञानकथारसभीने१०

दोहा—रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम ।
तृतिय भगौती दास नर, कौंरपालगुनधाम ॥ ११ ॥
धर्मदास ए पंच जन, मिलि बैसें इक ठौर ।
परमारथ चरचा करे, इन्हके कथा न और ॥ १२ ॥

कबहूं नाटकरस सुने, कबहुं और सिद्धांत ।
बहूं विंग बनाइके, कहे बोध विरतांत ॥ १३ ॥

अथ विंगयथा ।

दोहा—चितचकारकरुधरमधरु, सुमतिभगोतीदास ।
चतुरभाव थिरता भये, रूपचन्द परगास ॥ १४ ॥
इहिविधिज्ञान प्रकटभयो, नगरआगरेमांहि ।
देस देस महिविस्तऱ्यो, मृषादेशमहिनांहि ॥ १५ ॥

चौपाई ।

जहां तहां जिनवाणी फैली । लखे न सोजाकी मतिमैली॥
जाके सहज बोध उतपाता । सोततकालखे यहबाता १६

दोहा—घट घट अंतर [illegible] ।
[illegible] ॥ १७ ॥

बहुत [illegible] [illegible] रूप बात कहि लीजें ॥
नगर आगरा मांहि [illegible] ता । बनारसीनामेलघुज्ञाता॥१८॥
तामें कवित कला चतुराई । कृपा करे ए पंचो भाई ॥
ए परपंच रहित हिय खोले । ते बनारसीसोंहँसिबोले॥१९॥
नाटक समैसार हित जीका । सुगमरूप राजमली टीका ॥
कवित बद्ध रचना जो होई । भाषाग्रंथ पढ़े सबकोई ॥२०॥
तब बनारसी मनमाहि आनी । कीजे तो प्रकटे जिन बानी ॥
पंच पुरुष की आज्ञा लीनी । कवितबंधकीरचनाकीनी २१
सोरह सें तिरानवे बीते । आसुमाससितपक्ष वितीते ॥
तिथि तेरसि रविवार प्रबीना । तादिनग्रंथसमापतकीना२२॥
दोहा—सुखनिधान सकबंधनर, साहिब साहिकिरान ।

सहससाहिसिरमुकुटमनि,साहजहांसुर ।
जाके राज सुचैनसों, कीनो आगम ॥२४॥
इति भीती व्यापी नही, यह उनको उपगार ॥

अब सबका ठीक कथन ।

सवैया इकतीसा—तीनसें दसोत्तर सोरठा दोहा छन्द दोउ, जुगलसें तेतालीस इकतीसा आने हैं । छासी सु चौपाईये सेंतीस तेइसे सवैये, वीस छप्पे अठारह कवित्त वखाने हैं ॥ सात फुनिही अडिल्ले चारि कुंडलीए मिले, सकल सातसें सत्ताईस ठीकठाने हैं । वत्तीस अच्चर के सलोक कीने ताके लेखे ग्रंथ संख्या सत्रहसे सात अधिकाने है ॥ २५ ॥

दोहा—समयसार आतम दरव,नाटक भाव अनंत ।
सोहै आगम नाम में, परमारथ विरतंत ॥ ७२६ ॥

इति परमागम समयसारनाटक नाम ।...द्धांत संपूर्णम् श्री रस्तु.